विषय सूची

इस पुस्तक की बात

मैं कोई डाक्टर या वैद्य आदि चिकित्सक नहीं हूँ, पर चिकित्सार्थी अवश्य हूँ। मैं अपना आरोग्य चाहता हूँ और सभी को निरोग तथा स्वस्थ देखने का अभिलाषी हूँ। मैं गरीब, अनपढ़ तथा गाँव-खेड़े के निवासियों को भी तन्दुरुस्त रहने का अधिकारी मानता हूँ, जो आदमी बीमार पड़ता है, बहुत-कुछ उसे ही उसके लिए दोषी समझता हूँ।

अपने बचपने में मैं गाँव में था; वहाँ बीमारी में आयुर्वेदिक औषधि ही लिया करता था। पीछे शहर में आने पर एलोपैथिक औषधियों का प्रयोग होने लगा। बाद में सोचने लगा कि होम्योपैथिक दवाई सस्ती है और तेज न होने से उससे लाभ चाहे तत्काल न हो, उससे विकार भी विशेष नहीं होता, इसलिए मैं उसकी ओर आकर्षित हुआ। इस प्रकार सन् १९५० तक मैंने इन तीन प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों का ही उपयोग किया।

सन् १९५१ में मैंने गाँधीनगर (जयपुर) के प्राकृतिक चिकित्सालय में अपने दमे का इलाज कराया। उस सिलसिले में मेरा वहाँ नौ महीने रहना हुआ। इसके बाद मैं जलवायु-परिवर्तन और स्वास्थ्य-सुधार के लिए वहाँ समय-समय पर गया और कई-कई माह ठहरा। अस्तु, मैंने वहाँ प्राकृतिक चिकित्सालय में अनेक रोगियों का इलाज होते देखा; वहाँ अच्छे हो जाने वालों में से कितने ही ऐसे थे जो एलोपैथी और वैद्यक-चिकित्सा कराते-कराते उकता गये थे, और जिनमें से कुछ के रोगों को तो बड़े-बड़े अस्पतालों के डाक्टरों ने असाध्य बतला दिया था। इससे मेरे मन में यह विचार आया कि प्राकृतिक चिकित्सालय के डाक्टर श्री किशन लाल के विविध प्रयोगों की बात लेख-बद्ध हो जाय। डाक्टर साहब को लिखने का अभ्यास तथा रुचि न थी। पर मेरे बारबार कहने तथा श्री रामेश्वर अग्रवाल (मंत्री, प्राकृतिक चिकित्सालय) तथा दूसरे मित्रों द्वारा भी इसका आग्रह होने पर आखिर उन्होंने नवम्बर १९५३ से जैसे-तैसे लिखना शुरू कर दिया। उनका लिखने

है, और यह कितने ग्रन्थों से औषधि की प्रामाणिकता सिद्ध कर सकता है। प्राचीन काल में यहाँ वैद्यक का बोलबाला रहा; अंग्रेजों ने अपने शासन-काल में एलोपेथी को बढ़ावा दिया, और यहाँ जगह-जगह ऐसे अस्पताल कायम किये, जिनके लिए हर साल यहाँ करोड़ों रुपए की दवाइयाँ तथा दूसरी चिकित्सा-सामग्री विदेशों से आने लगी। अंग्रेज यहाँ से चले गए पर हमें अपनी दवाइयों के पक्के भक्त बना गए। अब राष्ट्रीय सरकार बहुत कुछ वही ढर्रा चला रही है। समाज के धनी मानी या बड़े समझे जाने वाले व्यक्ति अधिकांश में एलोपेथी ही पसन्द करते हैं। जो लोग गरीब हैं वे वैद्यक या होम्योपेथी की शरण लेते हैं।

औषधियाँ शरीर के लिए विजातीय और हानिकारक—ये विविध चिकित्सा-पद्धतियाँ रोग को दूर करने वाली न होकर, केवल उसे कुछ समय के लिए दबाने में ही सहायक होती हैं; कुछ दशाओं में तो इनसे अस्थायी लाभ भी नहीं होता हानि ही होती है। पर जब इनसे रोग कुछ समय के लिए दब जाता है, तब भी सौदा बहुत मंहगा और कष्टदायी होता है, कारण, ये सब अप्राकृतिक और अस्वाभाविक हैं, ये शरीर में विजातीय द्रव्य पहुँचाती हैं। इनका शरीर से मेल नहीं बैठता। ये खाद्य पदार्थ नहीं, ये हज्म होकर शरीर का अंग नहीं बनतीं, जैसे अन्न, फल, मेवे और शाक बन जाते हैं। प्रकृति को ये विजातीय पदार्थ आगे पीछे शरीर से बाहर निकालने पड़ते हैं, और इसमें उसे बड़ी शक्ति लगानी पड़ती है। कई बार इन विजातीय पदार्थों का थोड़ा बहुत प्रभाव काफी समय तक बना ही रहता है, और ये किसी न किसी रूप में कुछ विकार पैदा करते रहते हैं। औषधि लेने से रोगी का जब एक रोग दब जाता है तो वह समझता है कि उसे औषधि से बड़ा लाभ हुआ, और जब उसे कोई नया रोग होता है तो वह उसका पहले ली हुई औषधि से कुछ सम्बन्ध न समझ सकने के कारण उस रोग के लिए नयी औषधियाँ लेने की तैयारी करता है। इस प्रकार वह दवाइयों के चक्कर में पड़ा रहता है। नयी-नयी बीमारियाँ और नयी-नयी दवाइयाँ।

रोग ईश्वरीय देन है, पर आदमी उसे अभिशाप बना लेता है—प्रायः आदमी रोग से बहुत चिन्तित और परेशान हो जाते हैं, कोई उसके लिए मन्त्र-तन्त्र या जादू टोना आदि कराते हैं, कोई वैद्यों या डाक्टरों की दवाई लेते हैं, दवाइयाँ नित्य नयी बनती जाती हैं, इनकी संख्या की कोई सीमा नहीं। कीमत में भी एक से एक बढ़ कर होती हैं। और आजकल तो अनेक बीमारियों के लिए तरह तरह के इन्जेक्शनों का आविष्कार हो गया है। आदमी इनके चक्कर में पड़ कर जाने-अनजाने अपना कष्ट बढ़ाता रहता है और पैसा, समय तथा शक्ति नष्ट करता रहता है। वह इन सब बातों से बच सकता है—अगर वह बीमारी के मूल रहस्य को समझ ले।

वास्तव में रोग तो मनुष्य के भीतरी विकारों को निकाल फेंकने की एक ईश्वरीय या प्राकृतिक क्रिया है। जब बीमारी हो तो आदमी को समझना चाहिये कि अब प्रकृति मेरे शरीर की सफाई कर रही है, इस प्रकार वह प्रकृति की सहायता करे जिससे कि विकार जल्दी और आसानी से निकल जाय। इस दृष्टिकोण से विचार करें तो रोग एक वरदान है। पर आदमी प्रायः ऐसा नहीं समझते, और विपरीत व्यवहार करते हैं। हम रोग को दबाने के लिए औषधि रूप एक नया विकार और शरीर के अन्दर घुसा देते हैं और इस प्रकार प्रकृति के काम में बाधा डालते हैं, अथवा उसके कार्य-भार को बढ़ा देते हैं, कारण कि अब प्रकृति को इस औषधि रूप विजातीय पदार्थ को शरीर से निकालने का काम और करना पड़ेगा, और उसके लिए यह काम जितना कठिन या अधिक समय-साध्य होगा उतना ही मनुष्य का अहित है। नये-नये रोग पैदा होते रहते हैं। फिर नये रोगों को दबाने के लिए पहले से अधिक तीव्र औषधि ली जाती है। इस प्रकार रोगों को बारबार दबाते रहने से नये रोग अधिकाधिक विकराल बनते जाते हैं। इस प्रकार पुराने रोग, पागलपन, मृगी, हिस्टीरिया, उन्माद, हृदय-रोग, दमा, केन्सर, बवासीर, नासूर, क्षय, अस्थमा, कुष्ठ आदि का

प्रादुर्भाव हो जाता है, जो पीछे असाध्य अवस्था तक पहुँच कर आदमी की जान के लिए खतरा वन जाता है।

सारांश यह है कि कोई रोग आने पर यदि हम प्राकृतिक उपचार करें तो हमें उससे वहुत लाभ हो सकता है, पर जब हम औषधियों के चक्कर में पड़कर अपने शरीर की स्वाभाविक क्रिया में वाधा डालते हैं तो वह रोग हमारे लिए अभिशाप सिद्ध हुए विना नहीं रहता। इससे समझदार व्यक्तियों के लिए अपना कर्त्तव्य निश्चित करने की दिशा स्पष्ट हो जाती है।

आजकल औषधियों का सेवन वहुत ही अधिक होता है— आजकल लोगों का दवाइयाँ लेने की प्रवृत्ति वहुत वढ़ी हुई है। कितने ही तो स्वस्थ होते हुए भी वस्ती में वीमारी फैलने की आशंका मात्र से दवाई लेना आरम्भ कर देते हैं। वहुत से आदमी भोजन करने के वाद कोई चूर्ण, चटनी, सोडा, लेमनेड आदि ऐसा पदार्थ लेते हैं जिससे भोजन पचने में मदद मिले। उनकी समझ से प्रकृति ने हमारी शरीर रचना में यह कमी रख छोड़ी है कि हम वाहरी और कृत्रिम सहारे के विना अपना भोजन भी नहीं पचा सकते।

ऐसे वातावरण में रोगों से ग्रस्त आदमी तरह-तरह की दवाइयाँ लें तो क्या आश्चर्य! औषधियों में जड़ी वूटी या वनस्पति के अतिरिक्त अनेक प्रकार के खनिज या सामुद्रिक पदार्थ जैसे लोहा, चाँदी, सोना, हीरा, पारा, गन्धक, अभ्रक, मूँगा, मोती, शंख आदि न जाने क्या-क्या होता है। अफीम, शराव, संखिया, आदि का भी उपयोग होता है। अनेक जानवरों का रक्त, चर्वी, मांस आदि भी विविध रूपों से दिया जाता है। नित्य नयी औषधियों के आविष्कार हो रहे हैं। आदमी को अपने इस निरन्तर वढ़ते हुए ज्ञान का गर्व है, परन्तु वह भूलता है कि प्रकृति ने हमारे शरीर की रचना में ही रोग निवारण की व्यवस्था करदी है। यदि हम इस वात को अच्छी तरह ग्रहण कर लें और अपना जीवन यथा सम्भव प्राकृतिक वनाने की ओर ध्यान दें तो हम वहुत

कुछ स्वस्थ रह सकते हैं। और यदि कभी बीमार भी पड़ें तो प्रकृति द्वारा दिये हुए पदार्थों–जल, वायु, तेज और मिट्टी के उपचार से–और भोजन परिवर्तन या सुधार से सहज ही आरोग्य लाभ कर सकते हैं।

प्राकृतिक साधनों की उपयोगिता—हमारा शरीर पंच तत्वों या पंच महाभूतों का बना है, हमारी चिकित्सा में इन्हीं पदार्थों का उपयोग होना चाहिए। पर चतुर चालाक आदमी ने तरह-तरह की औषधियों का अविष्कार किया, लोभी लालची लोगों ने औषधियों को व्यवसाय का साधन बना लिया और अब संसार की अधिकांश जनता उनके जाल में फंसी हुई है। वास्तव में मानव शरीर रूपी यंत्र के सुधार के लिए प्राकृतिक साधन उससे कहीं अधिक उपयोगी हैं, जितना उन्हें समझा जाता है। मनुष्य का हित इसी में है कि वह सरल सादा जीवन बिताए और दवाइयों के चक्कर में न पड़े। दवाइयों का जो 'व्यापार' चल रहा है, यह अनैतिक तथा हानिकारक ही है।

गाँधी जी के विचार—गाँधी जी दवाइयों के बहुत ही विरोधी थे। उनका कथन है :—

'हम लोगों की आदत है कि जरा कोई बीमारी होते ही डाक्टर, वैद्य या हकीम के पास दौड़ लगाते हैं। उनके यहाँ न पहुँच पायें तो अड़ोसी, पड़ोसी, नाई-धोबी जिसने जो दवा बता दी, वही सेवन करने लगते हैं। हम माने बैठे हैं कि दवा के बिना बीमारी नहीं जाती। यह बहुत बड़ा वहम है। इस वहम ने जितनों को दुखी किया है और कर रहा है, उतने और किसी कारण से नहीं होते, न होंगे। यदि हम बीमारी की वास्तविकता को समझ लें तो इतने बदहवास न हों। बीमारी अर्थात् बेआरामी यानी तकलीफ। बीमारी का इलाज बजा है, पर बीमारी दूर करने को दवा का इस्तेमाल बेकार है। सिर्फ इतना ही नहीं, उलटे उससे बहुत बार नुकसान होता है। घर में पड़े कूड़े को ढाँक देने का जो नतीजा होता है, वही दवा का होना है। ढक्कन सड़ा

कर कूड़े की मात्रा को बढायेगा। पहला कूड़ा तो निकालना ही था, इस नये कूड़े को और निकालिए यही दशा दवा लेने वालों की होती है। यदि हम कूड़े को निकाल दें—निकल जाने दें तो कुदरत अपने आप सफाई कर लेती है। बीमारी (बेआरामी) द्वारा कुदरत हमें शरीर में कूड़े के एकत्र होने की सूचना देती है। कुदरत ने शरीर में कूड़ा निकालने के द्वार कर रखे हैं और कोई बीमारी आने पर हमें समझना चाहिए कि कुदरत ने हमारे शरीर में एकत्र कूड़े को निकालना शुरू किया है। हमें कूड़ा सफाई के लिए आने वाले का एहसानमन्द होना चाहिए। उसके सफाई करते समय कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो वह चुपचाप सहना चाहिए। यदि उस वक्त हम खामोशी रखें तो हमारा शरीर स्वच्छ हो जाय, हम रोग रहित हो जायँ।'

गांधी जी का प्राकृतिक चिकित्सा में अटूट विश्वास था, उन्होंने अपने लिए, अपने घर वालों के लिए तथा अन्य व्यक्तियों के लिए बहुत कठिन रोगों में भी प्राकृतिक उपचार किये। उनके कुछ विचार इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर दिये गये हैं। उन्होंने समय-समय पर बताया कि वह औषधि अच्छी नहीं मानी जानी चाहिए जो बीमार पड़ने पर खाकर थोड़े दिन के लिए अच्छा बना दे। सच्ची और अच्छी दवा तो वह है जो बीमारी को अच्छा कर दे, और इतना ही नहीं बल्कि फिर से बीमारी होने न पावे—बीमारी को रोके। उनकी यह इच्छा थी कि आदमियों का खानपान, रहन-सहन ही प्राकृतिक नियमों के अनुसार हो, जिससे आदमी बीमारी ही न पड़े। महात्मा गांधी की बहुत सी बातें अधिकांश आदमियों की समझ में नहीं आयीं, और जिनकी समझ में आयीं, वे भी प्रायः अपने पुराने संस्कारों के कारण उन पर अमल बहुत कम कर पाये। यही कारण है कि इस समय केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों में गांधीवादी कहे जाने वालों का भारी बहुमत होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार में कुछ विशेष कदम नहीं उठाया गया। आवश्यकता है कि विचारशील सज्जन गांधी जी की 'आरोग्य की कुंजी' पुस्तक और आरोग्य विषय के फुटकर लेख और प्रवचन तथा

सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सकों की विविध रचनाओं को पढ़ें और उनकी उपयोगिता समझें।

पाश्चात्य डाक्टरों और दार्शनिकों का मत—यूरोप अमरीका आदि में अधिकतर एलोपेथी-चिकित्सकों की ही अधिकता है। तथापि आधुनिक काल में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचारकों और समर्थकों की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। वहाँ के कुछ खास-खास दार्शनिकों और डाक्टरों का भी मत प्रकाशित किया जाय तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जाय। हम उसके विस्तार में न जाकर नमूने के तौर से दो एक का मत यहाँ उद्धृत करते हैं—

'हमारी सभी आरोग्यकारी औषधियाँ विष हैं—और इसके फल-स्वरूप औषधि की हरेक मात्रा रोगी की जीवन शक्ति का ह्रास करती है।'

—प्रो० एलोंजो क्लार्क एम० डी०

'अपने दीर्घ जीवन के आधार पर मैं अन्तःकरण से कह सकता हूँ कि यदि पृथ्वी पर एक भी डाक्टर, अस्त्र-चिकित्सक, औषधि विक्रेता, तथा एक भी बूँद दवा नहीं रहती तो जिस प्रकार पृथ्वी पर आज रोग और मृत्यु का प्रादुर्भाव है—वह अपेक्षाकृत बहुत कम होता।'

—डा० जानसन एम० डी०

यदि पृथ्वी पर रोग-निवारण के लिए कोई भी व्यवस्था नहीं रहती, तो भी मैं किसी को दवाई नहीं देता, क्योंकि मैं अच्छा नहीं कर सकता तो कम से कम बुरा करने से तो बचता।

—डा० ट्रेल एम० डी०

रोग की चिकित्सा-विधि न तो विज्ञान है, न परिमार्जित कला ही है, बल्कि एक फलता-फूलता व्यवसाय है।

—सर जेम्स बार

(उपसभापति, ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशन)

यह कोई पेशा नहीं है, बल्कि एक षड्यंत्र है।

—बर्नार्ड शा

रोगी के शरीर में दवाइयों की जितनी बूँदें डाली जाती हैं, वे रोगी पर औषधि की परीक्षा के सिवा और कुछ नहीं हैं।

—डा० वष्टक
(लेखक, 'औषधियों का इतिहास')

जिन औषधियों का हम प्रयोग करते हैं, उनके सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत ही कम है, तथा जिस शरीर पर हम औषधियों का प्रयोग करते हैं तथा जिस शरीर पर हम औषधियों का प्रयोग करते हैं, उनके सम्बन्ध में तो हमारा ज्ञान और भी अपूर्ण है।

—सर विलयम आसलर

नहीं चिकित्सा सच्ची है कि प्रकृति स्वयं करती है। डाक्टरों की औषधियाँ केवल लक्षणों को रोकने का प्रयत्न करती है, परन्तु रोग को अच्छा नहीं करती।

—शोपनहार

किसी चिकित्सक को बुलाने की अपेक्षा किसी मित्र को बुलाओ। डाक्टर और कुछ नहीं एक शत्रु है।

—पाथोगेरस

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार की आवश्यकता—क्या कुछ लोकसेवी सज्जन प्राकृतिक चिकित्सा का घर-घर प्रचार करके देश की दीन दुखी जनता को आशा का संदेश देने का निश्चय करेंगे। खासकर भारत जैसे ग्रामीण और गरीब आबादी की बहुतायत वाले देश में स्वास्थ्य साधन और रोग निवारण की समस्या प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से ही हल हो सकती है; और हाँ केवल निर्धन लोगों की ही नहीं, उन धनीमानी और अमीरों की भी यह बहुत बड़ी सेवा होगी, जो अपना धन खर्च करके आरोग्य प्राप्त नहीं करते, उल्टा नई-नई बीमारियों को आमंत्रित करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा नवयुग का संदेश है, यह सर्वोदय की भावना के अनुसार तो है ही।

———

[२]

महारोगी से प्राकृतिक चिकित्सक

डाक्टर, वैद्य, हकीम तीनों कमाने का पेशा करते हैं, दूसरों के भले के लिए वे चिकित्सा कार्य नहीं सीखते। यह दूसरी बात है कि इनमें कोई-कोई परोपकारी भी होते हैं। केवल एक कुदरती इलाज ही है कि जिसका जन्म परोपकार में हुआ है।

—गांधी जी

जो गूंगों को वाणी प्रदान करता है, जिसकी कृपा से लूले-लंगड़े व्यक्ति पहाड़ को पार कर सकते हैं, उस परमानन्द माधव की मैं वन्दना करता हूँ।

—संस्कृत वन्दना

अभिशाप वरदान बन जाते हैं—मानव जीवन कैसा रहस्यमय है। अनेक बार ऐसी घटनाएं होती हैं, जो बहुत चिन्ताजनक और दुख-दायी प्रतीत होती हैं, पर पीछे बहुत ही कल्याणकारी सिद्ध होती हैं। कई बार आदमी का दीवाला निकल जाता है, या उस पर आर्थिक संकट आ जाता है तो उसकी आन्तरिक प्रतिभा चमक उठती है, और वह नये उत्साह से ऐसा कारोबार करने लगता है जो पहले से भी अधिक स्थायी और लाभदायक होता है। कभी-कभी आदमी को कोई भारी चोट लगी है तो उससे उसका कोई पुराना विकार एक दम हट गया है। कभी-कभी किसी प्रिय जन की मृत्यु या वियोग से आदमी को ऐसा ज्ञान और शान्ति मिल जाती है जो अन्य किसी उपाय से मिलना कठिन ही था। साहित्यक क्षेत्र से जानकारी रखने वालों से यह छिपा नहीं है कि हमारी अनेक उच्चकोटि की रचनाएं जेल या कैद खाने में लिखी गयी हैं। इनमें से हर प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते

हैं; पर उससे होने वाले विस्तार में न जाकर यहा यही करना है कि सृष्टि में अनेक वार जो अभिशाप मालूम होता है, उसका कभी-कभी वहुत आश्चर्यजनक परिणाम देखने में आ जाता है।

क्या ऐसा भी हो सकता है - इस तरह के विचार मन में आने का कारण क्या है ? मैं देखता हूँ कि गांधी नगर (जयपुर) के प्राकृतिक चिकित्सालय में एक सज्जन चिकित्सक का कार्य करते हैं और इन्होंने कितने ही वड़े-वड़े और असाध्य प्रतीत होने वाले रोगों का इलाज कर दिया। ये रहन-सहन और वोल-चाल से साधारण स्थिति के मालूम होते हैं और उच्च शिक्षा से भी वंचित हैं। ऐसे व्यक्ति का एक योग्य चिकित्सक होना आश्चर्यजनक है। पर कहीं अधिक आश्चर्य तो यह सुनकर होता है कि ये पहले वरावर वीमार रहा करते थे। इन्होंने हजारों रुपये अपने इलाज में खर्च किये। तो भी ये घोर कष्टों से छुटकारा न पा सके। हर घड़ी मृत्यु की कामना करते थे। ये न मरने में थे और न जीने में। इन्हें उस समय के देखने वाले अव देखें तो उन्हें यह विश्वास करना कठिन हो जाय कि ये वही व्यक्ति हैं; उन्हें यही अनुमान होगा कि वह महारोगी तो कभी का मरमरा गया होगा। वह अव तक जीवित रहे, वह ऐसा तन्दुरुस्त और दूसरों का इलाज करता हो—यह कैसे हो सकता है !

सत्य कल्पना से भी अधिक आश्चर्यजनक—इस सृष्टि में एक से एक वढ़ कर आश्चर्यजनक वस्तु है, और एक के एक वढ़कर आश्चर्यजनक घटनाएँ होती रहती हैं। अनेक वार सत्य कहानी से भी अधिक अचम्भे का होता है। अस्तु, हम यहाँ उपर्युक्त श्री किशनलाल अग्रवाल के जीवन का कुछ परिचय देकर यह वताएँगे कि किस प्रकार ये रोगी ही नहीं, महारोगी की अवस्था को पहुँचे, और फिर पीछे किस प्रकार निराशा की चरम सीमा को पहुँचकर इनके जीवन में नया मोड़ आया जो इनके लिए तो सुखकारी हुआ है, सैकड़ों दूसरे आदमियों के लिए भी हितकारी हुआ और हो रहा है।

श्री किशनलाल अग्रवाल का जीवन-परिचय, शिक्षा—
इनका जन्म श्रीमाधोपुर (जयपुर) में भादों बदी २, सम्वत् १९२६ को हुआ।❀ इनके पिता श्री बालूराम जी थे, ये रींगस से धनाढ्य सेठ नाथाराम जी के यहाँ गोद गये थे। श्री बालूराम जी का लालन पालन बड़े लाड़चाव से हुआ। क्रमशः खर्च बढ़ता रहा और कमाई कम होती गयी, इससे उन पर बहुत कर्ज हो गया। इस पर वे परिवार सहित एलिचपुर (मध्यप्रदेश) चले गये। कुछ समय बाद वे तो श्रीमाधोपुर वापिस आ गये परन्तु किशनलालजी को वहाँ ही छोड़ आये। कारण वहाँ ये श्री नारायणदास अग्रवाल के सम्पर्क में आ गये थे, जो इन्हें अपने बालक की तरह प्यार करते थे। उन्होंने इनको कुशाग्र बुद्धि तथा होनहार समझ कर इन्हें पढ़ाने में बहुत उत्साह दिखाया और यथेष्ट सहायता की। इस प्रकार किशनलाल जी ने एलिचपुर में उर्दू लेकर (जिसका कुछ अभ्यास ये श्रीमाधोपुर में कर चुके थे) पढ़ना शुरू कर दिया। उस समय ये तेरह साल के थे। स्कूल के हेड मास्टर श्री खैरखॉह बहुत सज्जन थे। उन्होंने इनकी पढ़ाई अच्छी देख कर इन्हें चार रुपये मासिक छात्रवृत्ति दिला दी, जिससे इन्हें उस समय बहुत सहारा मिला। एलिचपुर में दो साल रह कर इन्होंने छठा क्लास पास कर लिया। पीछे ये अमरावती में सातवें क्लास में दाखिल हो गये। पर कुछ समय बाद घर की आर्थिक स्थिति के कारण इन्हें पढ़ाई छोड़ कर आजीविका कमाने में लगना पड़ा। इस समय ये सोलह वर्ष के हो गये थे।

कारोबार, धन प्राप्ति और गार्हस्थ जीवन—
रोजगार की तलाश में किशनलाल जी छावनी मरदान (पेशावर) गये, जहां इनके बहनोई श्री बिरधीचन्द रहते थे। उन्होंने तथा उनके पिता जी ने छः साल इनका काम देख कर मार्च १९०६ में इन्हें एक अलग दुकान

❀ यह तिथि अनुमान से लिखी गयी है, यहां तो ठीक निश्चित सन् से मालूम नहीं।

नौशेरा छावनी में खुलवा दी। इस बीच में इनका विवाह हो गया था। दुकान में आढ़त का और थोक परचून आटे का काम होता था। धीरे-धीरे इससे अच्छी आमदनी होने लगी, तथापि कर्जदार होने के कारण इनके पिता जी बहुत चिन्तित रहते थे। रुपया पास न होने के कारण उन्होंने किशनलाल जी की शादी भी (श्रीमाधोपुर का) मकान रेहन रख कर की थी। यह मकान पीछे ऋणदाता को दो हजार रुपये में बेच दिया गया था। परन्तु शादी के आठ साल बाद ऋणदाता को यह रकम देने पर इन्हें मकान वापिस मिल गया। हाँ, मकान मिलने से दो-तीन साल पहले इनके पिता जी का देहान्त हो गया था। अस्तु, किशन-लाल जी का रोजगार अच्छा चलने लगा, और इन्होंने अपने पिता के समय का ऐसा ऋण भी चुका दिया जिस लिये बीस-पच्चीस वर्ष हो गये थे। अब ये नौशेरा छावनी में अच्छे धनवानों में गिने जाने लगे। इनका कुटुम्ब भी बढ़ गया। इनको चौदह सन्तान हुईं, उनमें से तीन लड़के और तीन लड़कियाँ इस समय मौजूद हैं। इनमें से दो लड़कियों और दो लड़कों की शादी हो चुकी है।

रोगों की कहानी; श्वेत कुष्ठ—अब इनके जीवन का दूसरा पहलू देखें। कहा है, 'पहला सुख, निरोगी काया'। अफसोस! इनके इतने धनवान होते हुए भी इनका जीवन सुखमय नहीं था। तेरह साल की उम्र में इनकी कमर पर श्वेत कुष्ठ (फुलबहरी) का एक दाग हुआ। ये उसके लिए औषधि ढूंढ़ने लगे। विज्ञापन देख कर इन्होंने बावची आदि की मिलावट की औषधि लगाली, उससे सफेद दाग की जगह जख्म हो गये। बहुत कष्ट रहा। लगभग एक माह के बाद आराम हो पाया। अब दाग कुछ छोटा रह गया था, पर पीछे वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा। फिर इन्होंने कई तरह की औषधियाँ लगायीं और खायीं। परन्तु लाभ न हुआ और रोग बढ़ता ही गया।

जुकाम का इलाज किया, दमा हो गया; घोर कष्ट—सोलह साल की उम्र में ये श्रीमाधोपुर से मरदान गये। वहाँ इन्हें एक दिन

जोर का जुकाम हुआ। इस पर एक महाशय के कहने से इन्होंने (बिना दूध की) चाय पी। उसी रात को इन्हें जोर से दमा हो गया। बहुत तकलीफ हुई। तीन-चार दिन बात गये। आखिर, एक मित्र दुकानदार ने आकड़े (आख) के दूध में फूँकी हुई दवाई दी। उससे इन्हें लगभग पन्द्रह दिन में आराम हुआ। पर कुछ समय बाद फिर दमा हो गया। इन्होंने पहले वाली दवाई ली, पर इस बार उससे आराम नहीं हुआ। तब इन्होंने एक विलायती दवाई का धुँआ लिया। उससे कुछ दिन आराम रहा, पर पीछे दमा और भी जोर से होने लगा। यहाँ तक कि सर्दी में इन्हें सारी-सारी रात जागना पड़ता था। आखिर तंग आकर ये श्रीमाधोपुर आ गये, यहाँ कुछ आराम रहा। परन्तु पीछे नौशेरा जाने पर फिर दमा उसी तरह होने लगा। तीन साल की उम्र तक जगह-जगह दवाई की। बाद में ये अपनी ससुराल भगवतगढ़ आये और वहाँ एक प्रसिद्ध वैद्य से तीन माह तक इलाज कराया। लगभग तीन सौ रुपये खर्च हुए। औषधियों में अकूना, कनीर, मूंगा भस्म, अभ्रक, हरताल आदि शामिल थी। इससे केवल एक माह, वह भी जब तक ये इधर रहे, कुछ आराम रहा। नौशेरा जाने पर रोग का जोर पहले से भी ज्यादा हो गया। ये जगह-जगह से नयी-नयी दवाई मंगा कर लेते रहे, पर रोग बढ़ता ही रहा।

खुजली भी हो गयी—जब ये पच्चीस साल के थे, तो इन्हें खुजली भी हो गयी। कुछ दिन बाद वह मिट गयी। इस समय इन्होंने काशी से दमे की दवाई मंगा कर खाई, उसमें लगभग तीन सौ रुपये लगे। उससे डेढ़-दो साल फायदा रहा, लेकिन पीछे खुजली इतने जोर की हुई कि सारा शरीर गलने लगा। दमे और खुजली दोनों से ग्रस्त हो ये दो माह तक खाट में पड़े रहे। बकायन की अंदोली खाने से खुजली में कुछ आराम हुआ तो दमे ने और जोर पकड़ लिया।

नशा करके समय काटने लगे—कष्ट की सीमा न रही। ये रात दिन धतूरा पीकर, अमल (अफीम) खाकर, नशा करके समय काटने

लगे। जब जागते तो कष्ट की बेचैनी को मिटाने के लिए ये कोई न कोई नशा करके सो जाते। पीछे फिर जब जब जागते तो नशा लेकर बेहोश हो जाते। इस तरह ये सारा ही समय बेहोशी में रहने का प्रयत्न करते।

रोगों की संख्या ४४, मृत्यु की प्रतीक्षा—इस समय इन्हें नयी बीमारी बवासीर की और हो गयी, श्वेकुष्ट भी बढ़ता ही रहा। इस तरह ये कई बीमारियों से घिर गये। एक दिन पूछने पर डाक्टरों ने बताया कि इनके रोगों की संख्या ४४ हो गयी है, और अब बचना मुश्किल है। बहुत परेशान होकर ये कलकत्ते गये और दो माह इधर-उधर फिर कर तथा बीमारी में लगभग दो हजार रुपये खर्च करके लौट आये। पेशावर की लेबोरेटरी (प्रयोगशाला) में इन्होंने अपने खून की जाँच करायी, पर वहाँ से कोई समाधानकारक जवाब नहीं मिला। ये बहुत परेशान हो गये। ये पारे की गोली पानी में डाल कर उसमें हाथ रखते तो कुछ चैन पड़ता। दिन में या रात में नींद नहीं आती थी। नींद के वास्ते अखबार में विज्ञापन भी दिया, पर सब बेकार रहा। कभी कुछ नींद आ भी गयी तो पीछे और भी बुरी गति होती। खुजली से इनका सारा शरीर गल गया था। हाथ, पैर, नाक, मुंह, होठ, सिर—कोई जगह ऐसी न थी, जिस पर जख्म न हो। सीधा, टेढ़ा, दायीं करवट या बायीं करवट—किसी भी तरह लेटते नहीं बनता था। जख्म पर मक्खियाँ बैठतीं, उनसे अलग ही तकलीफ होती। उससे बचने के लिए मच्छरदानी लगायी जाती; पर उससे गर्मी बेचैन करती। निदान, इनका यह जीवन कैसा दुखमय था! इन्हें जीना कठिन ही नहीं, असम्भव प्रतीत होता था, पर मौत भी तो नहीं आ रही थी। क्या करें, कुछ समझ नहीं आता था।

सौभाग्य-सूचक भेंट—ऐसी स्थिति में एक घटना हुई, जिसका परिणाम पीछे बहुत ही कल्याणकारी रहा। सरदार ज्वालासिंह जी

इनके पास आये और इनसे कहा कि सन्तपुरे में एक साधु तीन दिन से भूखा है। वह मांसहारी मनुष्य के यहाँ का भोजन नहीं करता। हाँ, वह यह कहता है कि यदि कोई मांसाहारी मनुष्य मांस खाना छोड़ देने की प्रतिज्ञा करे तो मैं उसके यहाँ का भी भोजन कर सकता हूँ। सरदार जी ने कहा कि हम मांस नहीं छोड़ सकते। इसलिए आप उन्हें भोजन करा दो तो अच्छा रहेगा। इस पर किशनलाल जी उस के लिए भोजन बनवा कर भेजने लगे। ये उस साधु को आदर-पूर्वक स्वामी जी कहा करते थे।

स्वामी जी गुजराती थे, पर हिन्दुस्तानी भी बोलते थे। वे पहले दो सौ रुपये माहवार पाने वाले रेलवे एंजिनियर थे। उनका नाम चन्द्रप्रभु ब्रह्म वेत्तानन्द सरस्वती था। उनकी उम्र पचास-पचपन साल की मालूम होती थी। किशन लाल जी का कथन है कि उन्होंने मन की बड़ी साधना कर रही थी और वे रोगियों का भविष्य कई-कई माह पूर्व ठीक-ठीक बता देते थे।

बिना दवाई के इलाज; प्राकृतिक चिकित्सा—श्री किशनलाल ने स्वामी जी के लिए भोजन आदि की व्यवस्था करके जो सेवा-सत्कार किया था, उसके कारण स्वामी जी इनसे बहुत प्रसन्न हुए। जब उन्होंने इनकी घोर बीमारी और जीवन से निराशा की बात सुनी तो उन्होंने इनको बहुत सान्त्वना दी और कहा कि मैंने अपने वानप्रस्थ में सुना है कि बिना दवा के भी आदमी अच्छा हो जाता है। श्री किशन लाल को इस पर विश्वास नहीं हुआ, पर स्वामी जी बराबर इन्हें यह बात समझाते रहे। आखिर किशन लाल जी ने यह देखकर कि दवाइयों से भी तो आराम नहीं हो रहा है, ये स्वामी जी की बात को विचारणीय मानने लगे। पीछे जो बातचीत हुई उसके फल-स्वरूप इन्होंने स्वामी जी को पांच सौ रुपये देकर मुरादाबाद में प्राकृतिक चिकित्सा सीखने

के लिए भेज दिया।* स्वामी जी ने यहाँ से एक माह बाद इनके पास पांच छोटे-बड़े टब, लेम्प, भाफ-कोच, ड्राइ एयर बाद के यंत्र एनिमा आदि का सामान भेज दिया और इनका शेप रुपया लौटा दिया।

प्रथम प्रयोग—इसके बाद एक दिन किशन लाल जी को रात के समय अचानक खुजली का दौरा बहुत ही जोर से हुआ। दवाई की गोलियाँ समाप्त होने का इन्हें ध्यान नहीं था, और उस समय दवाई वाले डाक्टर की दुकान बन्द हो गई थी। इन्होंने सोचा कि अब तो मरना ही है, एक बार टब में पानी भरकर नहा तो लूँ। इन्हें स्नान की ठीक विधि मालूम न थी, तो भी टब में स्नान करने से इन्हें रात्रि में नींद आयी और खुजली कम रही। फिर तो इनके मन में आशा का संचार हुआ। अगले दिन इन्होंने दो-तीन बार स्नान किया। बहुत आराम मालूम हुआ। तीन दिन बाद ये और भी अच्छे हो गये, और होते गये।

प्राकृतिक चिकित्सा में विश्वास और इसका प्रचार—अब श्री किशनलाल को विश्वास हो गया कि बिना दवाई के, प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से भी, इलाज होता है। इन्होंने तार देकर स्वामी जी को बुला लिया। आने पर उन्होंने कहा कि जल्दी आ जाने से पूरी पद्धति नहीं सीख सका। अस्तु, किशन लाल जी ने इस चिकित्सा पद्धति की छानबीन शुरू कर दी और ये इस विषय या साहित्य मंगाने और उसका अध्ययन करने लगे। इस प्रकार इनका यह ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोगों से श्री किशनलाल को तो लाभ हुआ ही, धीरे-धीरे दूसरे आदमियों को भी इनके इस ज्ञान का पता लगता

---

* मुरादाबाद के श्री किशन स्वरूप श्रोत्रिय उत्तर भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के अग्रदूत कहे जा सकते हैं। इस विषय के दूसरे जानकार मास्टर रामचरण जी थे। ये पत्र व्यवहार द्वारा लोगों को प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार बताते और मार्ग-दर्शन किया करते थे। इसके लिए ये कुछ शुल्क लिया करते थे। श्री किशन लाल जी ने मास्टर रामचरण जी के परामर्श युक्त पत्रों से बड़ा लाभ उठाया है।

गया और वे भी इससे लाभ उठाने लगे। आस-पास के मोहल्लों और बाजार से लेकर पेशावर तक के आदमी इनके पास आकर प्राकृतिक चिकित्सा से लाभ उठाने लगे। ये भी अपना अधिकाधिक समय इस कार्य में लगाने लगे।

विशेष वक्तव्य, कारोबार करें या चिकित्सा—इससे कारोबार की ओर इनका ध्यान कम रह जाना स्वाभाविक ही था। इनके यहाँ बहुत से आदमी काम करते थे। इनकी गैर हाजरी में वे बेकार समय काटने लगे। कारोबार को अधिकाधिक धक्का लगता गया। यहाँ तक कि कुछ समय बाद इन्हें कई हजार रुपये का नुकसान नजर आने लगा। इन्हें बहुत चिन्ता हुई। अब उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की बात तक न करने का निश्चय किया। ये सारा ध्यान अपने कारोबार में लगाने लगे। इस पर घाटा दिन-दिन पूरा हो कर और भी लाभ हो गया।

अब इन्होंने फिर चिकित्सा कार्य की ओर ध्यान देना शुरू किया। कई रोगियों को अच्छा किया। ये सोचने लगे कि मैं जो रोग रूपी मृत्यु के मुँह से निकला हूँ तो दूसरों को आरोग्य का संदेश सुनाने और रोग-मुक्त करने के लिए ही हूँ। इन्होंने प्रतिज्ञा की कि ठीक हो जाने पर कारोबार छोड़कर अपनी शेष आयु भर केवल चिकित्सा का ही कार्य करूँगा, और अपना निजी पचीस हजार रुपये लगा कर अपने जन्म स्थान श्रीमाधोपुर में निश्शुल्क सेवा करूँगा। देश का विभाजन होने और पाकिस्तान बनने से इनकी इस योजना पर भयङ्कर आघात हुआ। इनकी सारी सम्पत्ति वहाँ ही रह गयी, और ये अपने परिवार के साथ जैसे-तैसे यहाँ आ सके। ऐसी दशा में प्राकृतिक चिकित्सा के काम में अपनी निजी रकम लगा कर निश्शुल्क सेवा करने की बात ही न रही। तथापि इस कार्य में इनकी रुचि और लगन बनी रही। अब ये डाक्टर हैं, प्राकृतिक चिकित्सा करते हैं। इनका परिचय आगे मिलेगा।

---

[३]

स्वयं अपनी चिकित्सा

कुदरती इलाज के तरीके में बीमार की बीमारी को जड़ से मिटा देने के साथ उसके लिए एक ऐसी जीवन-पद्धति का आरम्भ होता है, जिसमें फिर उसके रोगी होने की गुंजाइश नहीं रहती। कुदरती इलाज तो जीवन की एक पद्धति है।

—गांधी जी

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की विशेषता, स्वावलम्बन—अन्य चिकित्सा पद्धतियों की तुलना में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें आदमी परावलम्बी नहीं रहता। अन्य पद्धतियों में आदमी अपनी बीमारी के इलाज के लिए नाना प्रकार की दवाइयों की खोज करता है, बड़े विद्वान चिकित्सकों की सलाह लेकर या विज्ञापन देख कर कीमती दवाइयाँ लेता है, जिनमें बहुत सी उसके निवास-स्थान की क्या, उसके प्रान्त और देश की भी बनी हुई नहीं होतीं, दूर-दूर के देशों से मंगायी जाती हैं। जो दवाइयाँ बनायी हुई नहीं होतीं; कुछ कुदरती जड़ी बूटियाँ ही होती हैं, वे भी सब जगह सुलभ नहीं होती। उनमें से बहुत सी खास-खास जलवायु और विशेष प्रकार की भूमि में पैदा होती हैं, कोई-कोई तो पहाड़ों पर, या जंगलों में ही मिल पाती हैं। फिर वे हर मौसम में ताजी नहीं मिलतीं। इस प्रकार उन दवाइयों को प्राप्त करना साधारण आदमी के लिए बहुत कठिन होता है, और अनेक बार तो यथेष्ट धन खर्च करने पर भी तत्काल नहीं मिलतीं। काफी दौड़-धूप और प्रतीक्षा करनी होती है। और जब वे मिल जाती हैं तो आदमी को अपने पुराने संस्कारों के कारण एक प्रकार का संतोष भले ही हो, ये दवाइयाँ अधिकतर शरीर

के लिए विजातीय पदार्थ होने से आगे पीछे हानिकारक ही सिद्ध होती हैं।

इसके विरुद्ध प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में आदमी को दवाइयों के लिए दूर-दूर भटकना या अपना पैसा बरबाद नहीं करना होता। इस पद्धति में उपचार के लिए जिन पदार्थों की जरूरत होती है— मिट्टी, जल, वायु, धूप—वे प्रकृति ने खूब उदारता पूर्वक दे रखे हैं और इसलिए हर गाँव खेड़े तक में, जहाँ आदमी रहता है, वे काफी परिमाण में मिल जाते हैं। आदमी जरा समझ से काम ले वह इनका उपयोग करके स्वयं लाभ उठा सकता है, और दूसरों को भी इनसे लाभ पहुँचा सकता है। इस तरह प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति सस्ती और सुलभ होने के अतिरिक्त स्वाश्रयी है। इसका उपयोग करने वाला व्यक्ति स्वावलम्बी बना रहता है, उसे दूसरों का मुँह ताकना नहीं पड़ता।

अपने इलाज का महत्व—संसार में अनेक आदमी दूसरों को तरह-तरह का उपदेश दिया करते हैं, पर स्वयं अपना आचरण या व्यवहार नहीं सुधारते। ऐसे आदमियों का लोगों पर कुछ विशेष या स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता, हाँ कुछ देर के लिए तो उन्हें मान-प्रतिष्ठा मिल जाता है। परन्तु डाक्टर या चिकित्सक के लिए तो पहले अपना इलाज करना बहुत ही आवश्यक है, कारण उसके शरीर का विकार दूसरों को तत्काल मालूम हो जाने से उनकी उस पर श्रद्धा नहीं जमती और इसलिए वे उससे इलाज कराने में झिझकते हैं और जो व्यक्ति इलाज कराते भी हैं उन्हें मनोवैज्ञानिक भावना के कारण यथेष्ट लाभ नहीं होता। इसलिए जो व्यक्ति दूसरों की चिकित्सा करना चाहे उसके लिए स्वस्थ होना और यदि वह किसी रोग से ग्रस्त हो तो अपने उस रोग की चिकित्सा करना बहुत जरूरी है।

फिर, जो व्यक्ति अपने लिए विविध उपचारों का उपयोग करके लाभ उठा चुकता है, उसकी उन प्रयोगों की सफलता में दृढ़ आस्था

हो जाती है और वह दूसरों के लिए इनका प्रयोग आत्म-विश्वास पूर्वक कर सकता है।

श्री० किशनलाल का गिरा हुआ स्वास्थ्य—पहले बताया जा चुका है कि किशनलाल जी अग्रवाल को फुलबहरी (स्वेत कुष्ट) तो युवावस्था में पहुँचते-पहुँचते ही हो गया था, और इसका इलाज करने में कई प्रकार की औषधियों का सेवन किये जाने से दमा हो गया, पीछे इन्हें बवासीर और खुजली आदि ने घेर लिया। ये नयी-नयी दवा लेते गये, किसी किसी बार कोई बीमारी कुछ समय के लिए दबी पर पीछे फिर उभर आयी और पहले से भी अधिक उग्र रूप में; नयी-नयी बीमारियाँ भी होती रहीं। इस प्रकार जब बीमारी चरम सीमा को पहुँच गयी और जीना दूभर हो गया तो संयोग से इन्हें नयी दृष्टि मिली और ये प्राकृतिक चिकित्सा की ओर झुके। यहाँ हम संक्षेप में यह बतलाते हैं कि इन्होंने अपने मुख्य-मुख्य रोगों का इलाज किस प्रकार किया।

श्वेतकुष्ठ और धूप-स्नान—श्री किशनलाल को श्वेतकुष्ठ का रोग तेरह साल की उम्र से ही होगया था। यहाँ तक कि इनके शरीर के लगभग तीन-चौथाई भाग पर सफेद दाग हो गये थे। इसके इलाज के बारे में बहुत छानबीन की गयी, पर कोई भी इलाज सफल होता नजर नहीं आया। इनके अनुभव ने बतलाया कि प्राकृतिक चिकित्सा से ही लाभ हो सकता है। इसके लिए सारे शरीर का ठंडा-गरम स्नान लेना चाहिए, जिसकी विधि पहले बतायी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त धूप-स्नान जितने समय और जितनी बार लिया जा सके, लेना चाहिए। धूप स्नान की विधि यह है—रोगी उघाड़े बदन धूप में ऐसी जगह बैठता है, जहाँ हवा न आती हो। यदि हवा चलती हो तो चारों तरफ आड़ करके धूप ली जाती है। पहले दिन धूप-स्नान का समय थोड़ा सा ही रखा जाता है, और पीछे इसे धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। जाड़े के दिनों में शुरू में काफी समय तक धूप में रहा जा सकता है। प्रातः काल की किरणें सब से अधिक लाभदायक होती हैं। धूप-स्नान करते

समय सिर को हमेशा धूप से बचाया जाना चाहिये। जब सारे शरीर को धूप में रखना हो तो पहले सिर, मुंह और गरदन अच्छी तरह धोकर एक गीले तौलिये से इन स्थानों को अच्छी तरह ढक लेना उचित है। जब तौलिया सूख जाय या गरम हो जाय तो उसे फिर भिगो लिया जाय, जिससे सिर बराबर ठंडा रहे। धूप लेते समय रोगी को ठंडा पानी पीते रहना चाहिए। धूप जब तक अच्छी लगे तभी तक धूप-स्नान लेना लाभदायक है। धूप-स्नान के बाद तुरन्त ही ठंडे पानी से स्नान करना चाहिए या छाया में बैठ जाना चाहिए। इस क्रम को कई बार करना अच्छा साबित हुआ है।

ऐसा जान पड़ता है कि श्वेत कुष्ठ रोग शरीर में सूर्य-तत्व कम होने से पैदा होता है। इसलिए इसमें सूर्य-स्नान लाभकारी है। भारत में वेद पुराण तथा अन्य साहित्य में सूर्य नमस्कार की बड़ी महिमा बतायी गयी है। यहाँ अनेक आदमी प्रातः काल सूर्य के भक्ति-भाव पूर्वक दर्शन करते हैं, स्नान करके सूर्य की वन्दना करते हैं, और गायत्री मंत्र का जाप करते हैं। पर इन सब क्रियाओं में उनकी दृष्टि धार्मिक ही होती है, वे इनके स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रभाव का विचार नहीं करते। आधुनिक विज्ञान सूर्य किरणों के मानव शरीर पर पहुँचने वाले प्रभाव की मुक्त कंठ से प्रशंसा करता है। यह निर्विवाद है कि धूप-स्नान से जुकाम, शारीरिक निर्बलता, दमा, क्षय, चर्म रोग, रक्त संचार की न्यूनता और मज्जातन्तु के विकार नष्ट हो जाते हैं और शरीर में नया जीवन और नयी शक्ति का उदय होता है। धूप से अल्ट्रावायोलेट किरणें मिलती हैं जिनमें 'डी' विटेमिन (पोषण तत्व) भरपूर होता है, जो शारीरिक विकास और स्वास्थ्य साधना के लिए बहुत ही आवश्यक और उपयोगी होता है।

श्री किशनलाल जी को अब कुष्ठ रोग रुपये में एक आना मात्र रह गया है और अब यह स्वयं—प्राकृतिक जीवन पद्धति से—जा रहा है। इन्हें धूप-स्नान लेने आदि की बहुधा फ़ुरसत नहीं मिलती। अनेक बार ये उपेक्षा भी कर जाते हैं। इस रोग के बहुत समय तक बने रहने

के बाद वृद्धावस्था में, साठ वर्ष से अधिक आयु होने पर प्राकृतिक चिकित्सा की ओर आये हैं। इस रोग के रोगी जल्दी ही इधर ध्यान दें तो उन्हें बहुत जल्दी लाभ हो सकता है।

दमे का इलाज—दमे का दौरा होने पर श्री किशनलाल को जो उपचार बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है वह इस प्रकार है—दौरे के समय उपवास करना। पीछे हरी पत्तो के साग (बथुआ, चौलाई या पालक आदि) का 'सूप' लेना, अर्थात् साग को कूट कर पानी में औटाना, और उसे छान कर मामूली गरम रहते पीना (जरूरत हो तो जायके के लिए उसमें नींबू का रस और नमक मिलाया जा सकता है), एनीमा लेना और ठंडे-गरम स्नान लेना। कुछ आराम होने पर रसदार ऋतु अनुसार फल खरबूजा, मतीरा (तरबूज) आदि लेना ठीक रहा है। बाद में आटे में पत्तीदार साग मिला कर उसकी रोटी खाना और अलग से भी हरी पत्ती का साग काफी खाना लाभकारी है। रोटी और साग की यह बात तो हमेशा ही अच्छी है। भोजन में गाय का घी काफी मात्रा में लिया जा सकता है।

खूनी बवासीर का इलाज, उपयोगी सूझ—बवासीर के इलाज की बात इन्होंने न तो किसी पुस्तक में देखी और न किसी ने इन्हें बतायी। यह तो इन्होंने स्वयं ही निकाल लिया। यह बात इस प्रकार हुई। नौशेरा छावनी में काबुल दरया के नाम से एक बड़ी नदी सिंध (अटक) में गिरती है। वहाँ दिसम्बर जनवरी के महीनों में जब कि खूब सर्दी पड़ती थी, इन्होंने प्रातःकाल नंगे पैर और उघाड़े बदन सैर के लिए जाना शुरू किया। ये उधर ही टट्टी जाने लगे। शौच के लिए इन्हें वहाँ बहुत ही ठंडा पानी मिलता था। लाचारी थी। कोई दूसरा उपाय न था। पर इनकी यह लाचारी इनके लिए बहुत हितकर सिद्ध हुई। वह अत्यन्त शीतल जल मस्सों को बहुत सुखदायी मालूम हुआ। इस पर ये उस जल से मस्सों को हर रोज ज्यादा ज्यादा देर तक धोने लगे। पानी बहुत ही ठंडा लगता था, पर इन्होंने उसका क्रम जारी

रखा। इससे मस्से धीरे-धीरे छोटे पड़ते गये, यहाँ तक कि सर्दी का मौसम खत्म होने तक इनके मस्से जाते रहे। इस प्रकार इन्हें अनायास एक बहुमूल्य अनुभव प्राप्त हो गया, जो अचूक साबित हुआ।

खुजली की चिकित्सा, कटि स्नान, ठंडा-गरम स्नान, और भाप देना—खुजली से ये बहुत ही परेशान रहते थे। शरीर में जगह-जगह से पीला कड़ुआ पानी निकलता था। एक ही दिन में सफेद छोटी छोटी फुन्सियाँ होकर उनसे पानी बहने लगता था। बुरा हाल था। दिन रात चौबीस घन्टे किसी भी समय चैन नहीं था। इस के लिए ये कटि स्नान लेने लगे। इसकी विधि यह होती है कि आदमी टब में इस तरह बैठ जाता है कि पाँव बाहर रहते हैं और पेड़ू तथा पीठ पानी में रहती है। पेड़ू को कपड़े से हल्के हाथ से परन्तु तेजी से रगड़ा जाता है।

कटि स्नान से खुजली में आराम हुआ। फिर भी साल में एक दो बार दौरा हो जाता था; हाँ, वह पहले जैसा जोर का नहीं होता था। क्रमशः दौरा और भी हल्का होने लगा। उस समय इन्हें अन्य उपचारों का ज्ञान न था, और कटि स्नान से जितना आराम मिले उसे ही इन्होंने गनीमत समझा। पीछे इन्हें खुजली के उपाय मालूम होने लगे। तब इन्होंने ठंडा-गरम स्नान लेना शुरू किया। इस स्नान के लिए पानी कोरे घड़ों में रात भर खुली हवा में रखकर ठंडा किया जाता है, अथवा बरफ का पानी करके उसका उपयोग किया जाता है। जहाँ प्राकृतिक अर्थात् पहाड़ी बरफ न मिले तो (कारखानों में) तैयार की हुई बरफ काम में लायी जाती है। कड़कड़ाती सर्दी में पीतल की कोठी में ठंडा पानी भर लिया जाता है और उसमें रोगी को बैठाया जाता है। शरीर में काफी थरथराहट आ जाने पर रोगी को एक दम गरम टब में बैठाया जाता है। यह क्रिया बारी-बारी से एक समय में चार पांच बार की जाती है जितनी सहन हो सके। इस स्नान की समाप्ति ठंडे पानी से की जाती है।

इस स्नान से श्री किशनलाल को आश्चर्यजनक लाभ हुआ। इन्हें ऐसा मालूम होने लगा कि वर्षों का काम महीनों में—बल्कि यों कहिए कि हफ्तों में—हो रहा है। ठंडे-गरम स्नान के अलावा एक बात और भी की जाती थी। खुजली की जगह जहाँ पानी नहीं बहता था, सूजन हो जाती थी। वहाँ भाप दी जाती थी, फिर उस जगह को ठंडे पानी से धो दिया जाता था। यह क्रिया एक समय में चार पांच बार की जाती थी। पीछे भाप वाली जगह को कुछ देर कपड़े से ढक लिया जाता था। इस क्रिया से रोम-कूप खूब खुल जाते हैं और बड़ा आराम मिलता है।

सारे शरीर को भाप देने की विधि यह है कि पीतल या टीन की कोठी के बीचोबीच एक जालीदार चौकी रख दी जाती है। रोगी को बिल्कुल उघाड़े बदन इस चौकी पर बैठा दिया जाता है और उसे ऊपर से चारों तरफ कम्बल से ढकने की ऐसी व्यवस्था कर दी जाती है कि आदमी को सांस लेने को हवा मिल सके। यह करके कोठी में उसके किनारे के सहारे खूब गरम पानी डाल दिया जाता है जो चौकी से डेढ़-दो इञ्च नीचे रहता है। रोगी को भाफ लेने से पहले एक अंगोछे या तौलिये को ठंडे पानी में भिगो कर उसे सिर पर लपेट लेना चाहिए, और इस तौलिये को बराबर भिगोकर ठन्डा रखना होता है।

श्री किशनलाल ने अनुभव किया कि इस उपचार से जितना जल्दी लाभ होता है उतना किसी भी अन्य उपाय से नहीं होता। इस उपचार के साथ उपवास भी किया जाता था—वह तो सभी रोगों की रोकथाम करता है। खूब भूख लगने तक भोजन नहीं किया जाता था, करारी भूख लगने पर रसदार फल लिये जाते थे। पीछे क्रमशः गूदे-दार फल, सूखे मेवे, और दूध लिया जाता था। इस क्रम के बाद अन्न ग्रहण किया जाता था। किशनलाल जी को इन बातों का ज्ञान धीरे-धीरे हुआ, और जैसे जैसे अनुभव हुआ इन्होंने उसके अनुसार प्रयोग करके लाभ उठाया। इन्हें कुछ थोड़ी-थोड़ी खुजली तो कई साल तक रही; कारण कि इनका यह रोग चरम सीमा को पहुँच गया था। यदि

पहले यह पद्धति अपनायी गयी होती तो रोग का निवारण जल्दी ही हो जाना अनिवार्य था।

विशेष वक्तव्य—सन् १९०७ से १९२८ तक दवाइयों में विश्वास रखते समय किशनलाल जी ने अपने इलाज में हजारों रुपया खर्च किया। पर परिणाम उलटा ही रहा। रुपया तो गया ही, स्वास्थ्य भी चौपट हुआ। लम्बे अर्से तक जो कष्ट इन्होंने पाया उसे ये ही जानते हैं। इधर २६ साल से इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा अपनायी है। तब से इलाज के मद में एक पैसा खर्च नहीं हुआ, और स्वास्थ्य भी ठीक रहा। जो व्यक्ति मुद्दत तक हर घड़ी मौत की राह देखता था, मौत को बुलाता रहता था, वह अब जीवन का आनन्द ले रहा है। पिछले जमाने की याद करके ये सोचते हैं कि मेरा कैसा सौभाग्य उदय हो गया, परमात्मा का मुझ पर कितना अनुग्रह हुआ। क्यों न हो ये प्रकृति की शरण गये हैं। इन्होंने प्राकृतिक जीवन अपनाया है तो परमात्मा का अनुग्रह होना ही चाहिये। प्रकृति परमात्मा का ही रूप है। बहुत से आदमी ईश्वर को नहीं मानते, वे भी प्रकृति (नेचर) को तो मानते ही हैं। अस्तु स्वस्थ और सुखी जीवन के लिए हमें यथा सम्भव प्रकृति के निकट रहना चाहिए, जहाँ तक भी बन पाये प्राकृतिक जीवन और रहन सहन को अपनाना चाहिए; उसमें प्राकृतिक चिकित्सा की बात स्वयं आ जाती है।

---

[४]

अपने घर वालों की चिकित्सा

घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध।

—कहावत

यहाँ डाक्टर किशनलाल द्वारा किये गये उन प्राकृतिक उपचारों में से कुछ की चर्चा की जायगी जो उन्होंने समय-समय पर अपने घर वालों के किये।

अपने परिवार वालों का इलाज करने में कठिनाई—प्रायः चिकित्सक को अपने घर वालों का स्वयं इलाज करने में बहुत कठिनाई आती है। प्रथम तो जब अपने घर का आदमी बीमार पड़ता है तो प्रायः चिकित्सक को उसकी बहुत चिन्ता हो जाती है। वह अपने मन को ठीक नहीं रख सकता। बहुधा उसके घर के अन्य व्यक्तियों को उस पर यथेष्ट श्रद्धा भी नहीं होती। इस प्रकार हमने देखा है कि अनेक बार जब किसी डाक्टर या वैद्य के परिवार के आदमी के इलाज का प्रश्न होता है तो कोई बाहर का चिकित्सक बुलाया जाता है, और बुलाया जाना ठीक समझा जाता है।

फिर, प्राकृतिक चिकित्सा तो अधिकांश लोगों के लिए नयी चीज है। वे डाक्टर या वैद्य की बात को तो मान्य कर लेंगे, पर प्राकृतिक चिकित्सा की बात सहज ही उनके गले नहीं उतरती। वे इसे स्वीकार करके कोई जोखिम उठाना नहीं चाहते। इसलिए यदि किसी का इस पद्धति के प्रयोग का आग्रह हो तो सब का विरोध होना स्वाभाविक है। यदि किसी तरह प्राकृतिक चिकित्सा आरंभ भी कर दी जाती है, तो जब इसके फल-स्वरूप रोगी में कोई प्रतिकूल लक्षण दिखायी देने लगता है तो सब झुंझलाने और बिगड़ने लगते हैं। उस दशा में जो

व्यक्ति इस पद्धति का आग्रह करता है, उसे उस समय कोपभाजन बनना पड़ता है चाहे यह बात अल्पकाल के लिए ही हो। अस्तु, किसी को अपने घर वालों के लिए इस चिकित्सा के प्रयोग करने में बहुत कठिनाइयाँ आती हैं, इसमें बड़े धैर्य, गम्भीरता और सहनशीलता की आवश्यकता होती है।

डाक्टर किशनलाल जी के प्रयोग; अपने लड़के लालचन्द का इलाज—डाक्टर साहब के पुत्र लालचन्द जी (उम्र साल भर) को लगभग एक माह से कुकर खांसी थी। उसके साथ घर के सब बच्चों को भी होने लग गयी थी। ये लोग उन्हें दवाइयाँ दे-दे कर परेशान हो रहे थे। एक दिन ऐसा हुआ कि रात के समय खाँसी की दवाई तो रही नहीं और बीमारी बहुत बढ़ गयी। रात के बारह बजे थे; सब लोग बड़ी चिन्ता में थे। डाक्टर साहब ने लालचन्द जी को टब में कटि-स्नान कराया। दो मिनट बाद लालचन्द जी ऐसे सो गये कि गरदन लटक गयी। ये सोचने लगे कि न मालूम क्या हो गया। इन्होंने टब-स्नान बन्द करके उन्हें सुला दिया। इस पर वे खूब आराम से सो गये, करवट भी न बदली और दिन के लगभग बारह बजे जगे। उस समय उन्हें एक काला, बदबूदार और पतला दस्त हुआ। उसी दिन खांसी बन्द हो गयी; फिर, आज तक नहीं हुई। और यों, खांसी घर घर में ही विदा हो गयी।

लालचन्द जी ढाई साल के थे, तब ये मकान की २४ फीट ऊंची दूसरी मंजिल की खिड़की में से गिर गये। नीचे पक्की नाली थी। बेहोश हो गये। डाक्टर साहब ने उन्हें कटि-स्नान कराया। रात तक होश आ गया, और वे ठीक हो गये। कटि स्नान तीन-चार बार कराया गया था, यह देखने वालों को बड़ा आश्चर्य और कौतुहल हुआ। यह बात क्रमशः दूर-दूर तक फैल गयी, और वहाँ से आदमी इलाज के लिए आने लगे।

भतीजे के रोने का इलाज—एक वार डाक्टर साहव के भतीजे भालचन्द (उम्र १५ साल) को ऐसी वीमारी हो गयी कि वह हर दूसरे तीसरे दिन रोने लगता था। उसे देख कर घर वाले यह समझने लगे कि यह कोई भूत-प्रेत या देव-पितर आदि की वाधा है। उन्होंने दवाई के अतिरिक्त कई प्रकार की झाड़-फूंक और जंतर-तंतर किये। परन्तु कुछ आराम होने में न आया; वल्कि वीमारी उत्तरोत्तर वढ़ती ही गयी। आखिर डाक्टर साहव से प्राकृतिक चिकित्सा करायी गयी। डेढ़ माह इलाज करने पर भालचन्द ठीक हो गया। अव पाँच साल वीत गये हैं और उसे कोई तकलीफ नहीं हुई। इससे घरवालों को यह विश्वास हुआ कि यह रोग भी पेट की खरावी से होता है। निस्संदेह यदि खान पान और रहन सहन ठीक रहे तो किसी प्रकार का रोग न हो।

भौजाई का इलाज, वच्चा होने के समय; मिट्टी का जादू—एक वार डाक्टर साहव की भौजाई को वच्चा होने के समय वड़ा कष्ट हुआ। रात के दो वजे थे, और उसके जीने की आशा वहुत कम रह गयी थी। वात यह थी कि वच्चा अपने स्थान से चल कर और आधा वाहर आकर अटक गया था। वच्चा होने के समय का दर्द वन्द हो गया था और उसकी माँ वेहोश थी। डाक्टर साहव को जगाया गया। इन्होंने पेड़ू पर ठंडी मिट्टी की पट्टी लगाने को कहा। इस पर दायी ने आपत्ति की, उसने कहा कि सर्दी का मौसम है, हमने पीपलामूल देकर गर्मी पहुँचायी हुई है; ठंडी पट्टी से नुकसान होगा तो हम जिम्मेवार नहीं हैं। इस समय वच्चा होने का दर्द वन्द है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वच्चा होने में कितना समय लगे। आखिर, डाक्टर साहव के कहने से पट्टी लगायी गयी।

[इसके लिए मिट्टी ऐसी जगह से लानी होती है जहाँ मल-मूत्र आदि की गन्दगी न हो। मिट्टी चिकनी हो। पट्टी तैयार करने के लिए मिट्टी को खूव वारीक पीस कर और छान कर साफ ठंडे पानी में सान लिया

जाय। फिर उसे एक टाट के टुकड़े पर लगभग आधा इंच मोटाई में फैला दिया जाय। पीछे उस कपड़े को धीरे से एक हाथ पर उठा कर रोगी के शरीर के निर्दिष्ट स्थान पर इस तरह रखना चाहिए कि मिट्टी त्वचा के ठीक ऊपर पड़े और कपड़ा उसके ऊपर हो। पट्टी को दूसरे कपड़े से बांध दिया जाय। मिट्टी गरम हो जाने पर पट्टी बदल दी जानी चाहिए। पट्टी हटाने पर उस जगह को गीले अंगोछे से रगड़ कर धो डालना चाहिए और इसके बाद कुछ देर के लिए उस स्थान को गरम कपड़े आदि से ढककर जरा गरम कर लेना चाहिए।]

मिट्टी की पट्टी लगाने पर पांच मिनट में बच्चे का जन्म हो गया और सब अचम्भा करने लगे। दायी ने डाक्टर साहब को कोई मंत्र या जादू वाला समझा और कहा कि यह मंत्र हमें बता दो, यह हमारे बड़े काम का है। उसे यह विश्वास ही नहीं हो सका कि यह जादू टोने की बात न होकर मिट्टी की करामात है। हमारे यहाँ दाइयों के प्रशिक्षण में और चाहे जितनी बातें सिखायी जायँ, पर उन्हें मिट्टी की उपयोगिता समझाने की व्यवस्था कहाँ है, और कितनी कम है!

अपने दोहते का बड़ी माता की बीमारी में इलाज; हवा की करामात—डाक्टर साहब के लड़के लालचन्द की शादी के समय इनकी लड़की कौशल्या के पुत्र ओमप्रकाश (उम्र ढाई साल) को बड़ी माता निकल आयी। उससे पहले इनके बड़े लड़के चुन्नी लाल के पुत्र को माता निकली हुई थी। इस वास्ते कौशल्या और उसके पुत्र को पास के दूसरे घर में भेज दिया गया। आठ दिन बाद, जब चेचक खूब भरी हुई थी, अचानक आधी रात के समय बड़े जोर से बिजली कड़की और बारिश शुरू हो गयी। फूस की छत से पानी टपक कर बच्चे की चारपाई पर गिरा। संभालते-संभालते भी बिस्तर के कपड़े भीग गये। इसी समय वर्षा से भीगी हुई एक बिल्ली चारपाई पर गिरी। कौशल्या को इस बदशगुन से चिन्ता हो गयी, उसे ओमप्रकाश के बचने की आशा न रही। डाक्टर साहब ने उसे समझाया तो भी उसे नींद न आयी।

सवेरे चार बजे बच्चे की सांस कुछ ज्यादा मालूम होती थी। शम्भू जी की बुआ जी, जिन्हें कम सुनायी देता था, बच्चे के सांस की आवाज़ सुनकर शोर मचाने लगीं कि बच्चे तकलीफ बढ़ गयी है, इसका इलाज करो। डाक्टर साहब ने कहा कि दरवाजा खोल दो, वर्षा अब बन्द है, हवा खूब चलती है। बच्चे को बाहर ले जाकर इधर-उधर टहलो। पूस का महीना और ठंड बहुत होने से कौशल्या की ऐसा करने की हिम्मत नहीं होती थी, फिर बुआ जी भी उसे सर्दी से बहुत डराती थीं। आखिर डाक्टर साहब का बहुत आग्रह होने पर कौशल्या बच्चे को बाहर ले गयी। थोड़ी देर में वह घर के अन्दर आ गयी। बच्चा सो गया था। बुआ जी ने कहा कि बच्चा अन्त की नींद ले रहा है। तुमने गजब कर दिया, इसे इस वर्षा की हवा में बाहर निकाल दिया। भरी माता में ऐसा करनेकी बात मैंने अपने उम्र भर में कभी देखी क्या, सुनी भी नहीं। यह कह कर वे रोने लग गयीं। इस पर कौशल्या का भी धैर्य जाता रहा। वह रोती हुई अपनी माँ से पास गयी और कहा कि तुम्हारा दोहता तो जा रहा है, चलो देख तो लो।

कौशल्या की माता जी आयीं। डाक्टर साहब ने उन्हें समझाया कि चिन्ता की बात नहीं। पर इससे उनका और खास कर बुआ जी का समाधान नहीं हुआ और बच्चे को छेड़ा गया जिससे वह जाग गया। उस समय पाँच बजे थे। डाक्टर साहब के कहने से उसे दूध पिलाया गया तो वह लगभग डेढ़ पाव दूध पी गया, जबकि वह पहले इतने सवेरे नहीं पीता था। इससे भी बुआ जी को तसल्ली नहीं हुई, उन्होंने रोना-धोना जारी रखा। उनका कहना था कि यह दूध पीना तो मृत्यु के समय का है। बच्चे से बात की, तो वह अच्छी तरह बोला। तो भी विश्वास न हुआ। दोपहर को जब उसे ठीक देखा तो सब को अचम्भा हुआ। बुआ जी कहने लगीं कि पानी की करामात तो मैंने पहले भी देखी, पर हवा की करामात तो आज ही देखी है। अब मालूम हुआ कि सर्दी में इतना ऊँचा बुखार हवा से जल्दी ठीक हो जाता है। मैं जगह-जगह ऐसा करूँगी और कराऊँगी।

अपनी पत्नि का इलाज, जो कोयले की गैस से मूर्छित थीं—डाक्टर साहब की पत्नि एक दिन बहुत सवेरे स्नान-घर में नहाने गयीं, सर्दी का मौसम था, गरम पानी से स्नान किया जाता था। स्नान-घर की खिड़कियाँ बन्द थीं, इन्हें खोलने का ध्यान न रहा। स्नान के बाद इन्होंने, दूसरों को पानी गरम मिले, इसलिए हमाम में और कोयले डाल दिये। स्नान के बाद ये कपड़े पहन रही थीं कि कोयले की गैस से बेहोश हो गयीं, धोती बाँधते-बाँधते गिर पड़ीं। संयोग से स्नान-घर का दरवाजा कुछ खुला था। कुछ देर बाद घर वालों को इनका पता लगा। डाक्टर साहब ने देखा तो इनका बदन लकड़ी की तरह सख्त और जकड़ा हुआ था, नब्ज मालूम नहीं होती थी, आँखों की पुतलियाँ सफेद ही दिखायी देती थीं। इनका समाचार सुनकर बहुत से आदमी और औरतें इकट्ठी हो गयीं। सब इन्हें मरी हुई समझते थे। डाक्टर किशन-लाल ने इन्हें कटि-स्नान देने की बात कही तो आदमी इनकी 'बेवकूफी' पर हँसने लगे। किन्तु अन्त में स्नान दिया गया। कई मिनट कुछ असर मालूम न हुआ, स्नान का क्रम जारी रहा। ठंड का समय था, और पानी भी ठंडा ही था। रोगी को सर्दी से कँपकँपी आ गयी।

इसी समय स्वामी जी (चन्द्रप्रभु ब्रह्मवेत्तानन्द) डाक्टर साहब की पत्नि का समाचार पाकर यहाँ आगये। रोगी को काँपते देखकर उन्होंने कहा कि 'बोलो ओम् तत् सत्'। इस पर डाक्टर साहब की पत्नि इन शब्दों का उच्चारण करने लगीं और इसकी रट ही लगा दी। दर्शक कहने लगे कि इनमें तो बाय आगयी है: यह बच नहीं सकती। कुछ देर में ये सर्दी के मारे जोर से उछलने लगीं तो स्नान बन्द करके इन्हें रजाई आदि गरम कपड़े उढ़ा कर सुला दिया गया और गर्मी पहुँचाने के लिए चार आदमी एक एक हाथ और पैर को मालिश करने लगे। पहले बुखार १०१ डिग्री था, वह क्रमशः चढ़ कर १०४॥ होगया। तब इन्हें फिर कटि-स्नान ठंडे पानी से कराया गया। अब दिन के ६॥ बज गये थे। स्नान देने से इन्हें सर्दी लगने लगी तो उठा लिया गया। बुखार १०० रह गया था, पर थोड़ी देर पीछे फिर

१०४ होगया। इस पर फिर कटि-स्नान दिया गया, और जब टब में सर्दी लगने लगी तो फिर इन्हें कपड़े उढ़ा कर सुला दिया गया।

अब इनके नाक से काला-पीला पानी गिरना जारी हुआ तो धारा ही बहने लगी। रात के दस बजे तक पानी पड़ता रहा। पीछे सिर का दर्द कम हो गया। बुखार जाता रहा। अगले दिन इन्होंने अपने आपको पूर्ण रूप से स्वस्थ अनुभव किया। तब इन्होंने बताया कि ये कैसे वेहोश हुई थीं। इससे डाक्टर साहब को मालूम हुआ कि कोयले की गैस से (या सांप के काटने से) जो आदमी मृतवत हो जाते हैं, उनकी उचित उपचार किया जाय तो वे प्रायः बच सकते हैं। डाक्टर साहब ने पीछे ऐसे कई रोगियों का इलाज किया और सफलता प्राप्त की।

प्रसूति के बाद इलाज—डाक्टर साहब के सबसे छोटे लड़के मोतीलाल का जन्म हुआ तो उसकी माता जी का उपचार प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से ही किया गया था। उनके गर्भवती होने की अवस्था में देखने वाले उन्हें क्षय रोग बताने लग गये थे। वे पहले से ही बीमार थीं, और इधर तो नौ महीने बीमार ही रहीं। उनकी प्रसूती डाक्टर साहब प्राकृतिक ढंग से ही कराना चाहते थे, पर वे सहमत न हुईं। इस लिए एलोपेथी-डाक्टर बुलाया गया। उसने उनके लिए दवाई की तीन खुराक दी। पहली खुराक लेते ही जलन पैदा होगयी और और बुखार बढ़ गया। दूसरी खुराक से तकलीफ और अधिक हुई, तीसरी खुराक से तो बहुत ही बेचैनी होगयी। तब मोतीलाल की माता जी दवाई बदलने को राज़ी होगयीं। प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ की गयी। टब में नल के ठंडे पानी से 'मेहन' स्नान कराया गया। उससे बुखार घट गया, जलन कम होगयी और नींद भी अच्छी आयी। दोनों समय पन्द्रह-पन्द्रह मिनट का मेहन स्नान कराया जाता था। पानी चौकी से तीन इंच ऊंचा रखा जाता था। पहले ही दिन बहुत-कुछ सफाई हुई। तीसरे दिन तो पूरी ही सफाई होगयी। बुखार जाता रहा। कमर की पट्टी लगा कर इनकी पत्नि उठने-बैठने लगीं। आठ दिन में

शरीर बहुत अच्छा होगया। उनकी छाती में दूध भी काफी आने लगा। इस समय खुराक दूध और फल की ही थी, जो महीना भर चलती रही। इससे शरीर के सब विकार दूर होगये, उत्साह और स्फूर्ति बढ़ गयी।

इस प्रयोग की सफलता से स्वयं डाक्टर साहब भी बहुत प्रभावित हुए। उन्हें एक जीवन का नया दृष्टिकोण तथा नया रास्ता मिल गया। इसके बाद इन्होंने अपने परिवार में तथा दूसरों के यहाँ कई जापे कराये। इन्हें यथेष्ट सफलता मिली। जच्चा और बच्चा दोनों ठीक रहे। डाक्टर साहब बार-बार सोचते हैं कि प्रजनन अर्थात् सन्तान का होना प्रकृति की एक स्वाभाविक क्रिया है। पर लोगों ने अपने रहन-सहन, खान-पान और उपचार आदि की कृत्रिमता से इसे बहुत जटिल बना दिया है। यदि हम सादगी का जीवन व्यतीत करें, आराम-तलबी, विलासिता, शौकीनी, चटोरपना छोड़ दें, शरीरश्रम, संयम और प्राकृतिक उपचार आदि को अपनावें तो हम सहज ही अपने अनेक कष्टों से मुक्ति पा सकते हैं। क्या हमें यह स्वीकार है ?

सब से छोटे लड़के मोतीलाल के कई रोगों का इलाज—जन्म के समय मोतीलाल की छाती बैठी हुई, टेढ़ी मेढ़ी, अष्टावक्र की तरह थी। घरवालों ने तथा दूसरी बड़ी उम्र की औरतों ने उसे देख कर कहा कि इसका बचना मुश्किल है; जब इसकी छाती ही ठीक नहीं तो यह श्वास कैसे लेगा ! पर प्राकृतिक खान-पान और रहन-सहन से वह धीरे-धीरे ठीक होता गया। लेकिन दो साल का होने पर उसे डबल निमोनिया हो गया। वह भी प्राकृतिक चिकित्सा से ठीक हो गया। उसे दिन में दो-तीन बार कटि-स्नान दिया गया था। इस बार उसकी छाती कुछ ठीक हो गयी और वह साधारण डील डौल वाला दिखायी देने लगा। कुछ महीने बाद उसे बुखार हुआ और महामाई*के दौरे होने लगे। कुछ समय कटि-स्नान से दौरे रुकते रहे। पर एक बार ऐसा दौरा आया कि नब्ज ही लापता हो गयी। सारा शरीर लकड़ी जैसा कठोर हो गया। डाक्टर साहब ने कटि-स्नान कराया पर कुछ आराम

*बच्चों का मृगि रोग, इसे आसन भी कहते हैं।

नजर न आया। बच्चे की हालत बहुत खराब हो गयी, शरीर की हरकत भी बन्द और आँखों की काली पुतली भी गायब। सब लोग कहने लगे कि ठंडे पानी का टब-स्नान देकर इसे क्यों मार रहे हो! अब डाक्टर साहब को भी चिन्ता हुई। पर इन्हें अन्दर से ऐसी आवाज सुनाई दी कि घबराओ नहीं। इस पर इन्होंने एक मन बरफ मंगायी और उसके पानी में मोतीलाल को फिर कटि-स्नान कराया। इससे वह कुछ देर बाद काँपने लगा। तब इन्होंने उसे स्नान बन्द करके कपड़ा उढ़ाया और सुला दिया। दस मिनट बाद उसका काँपना बन्द हो गया तो इन्होंने उसे फिर कटि-स्नान कराया। इस प्रकार यह क्रिया चार बार होने पर उसे चेत हो गया। आँखों में काली पुतली नजर आने लगी, बन्द मुट्ठी खुल गयी, दाँत जो पहले प्रयत्न करने से भी नहीं खुलते थे, अब स्वयं खुल गये। नब्ज चलनी शुरू हो गयी, शरीर नरम होकर हरकत करने लगा। मोतीलाल ने रोते हुए पानी मांगा, यह देख कर सब चकित हो गये। मोतीलाल को रात को सात बजे बड़े जोर का, बहुत अधिक परिमाण में, और बदबूदार काला दस्त हुआ; उसमें गाँठें ही गाँठें थीं। कितना मलबा पेट में भरा था! अस्तु; अब पेट साफ हो गया और मोतीलाल आराम से सो गया। फिर वह ठीक हो गया; कमजोरी तो बहुत थी, वह धीरे धीरे दूर हो गयी। तीन साल बाद जब मोतीलाल नौशेरा से श्रीमाधोपुर आ गया था, उसे फिर दौरा हुआ; उपर्युक्त विधि से उसका इलाज हो गया। उसके बाद फिर कभी दौरा नहीं हुआ। उसका रोग चला गया, और वह अच्छा सुन्दर लड़का बन गया।

प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा—मोतीलाल को देखकर जब कभी डाक्टर साहब को उसकी पहले की शक्ल सूरत और बीमारी की हालत याद आ जाती है तो इनके सामने प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा का जीता-जागता एक स्थूल और प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद हो जाता है। ये ईश्वर को बहुत-बहुत धन्यवाद देते हैं कि इन्हें प्राकृतिक चिकित्सा का कुछ ज्ञान हो गया और ये बहुत से आदमियों को इससे लाभ

पहुँचा सके। डाक्टर साहब को बहुत ही अफसोस है कि उन्हें इस चिकित्सा पद्धति का ज्ञान पहले नहीं हुआ। यदि पहले इसका ज्ञान होता, तो उन्हें पक्का विश्वास है कि उनका सबसे बड़ा लड़का आनन्दीलाल भी इस रोग में अवश्य ही बच जाता। उस समय ये डाक्टरों, वैद्यों, हकीमों के ही नहीं, सयानों के भी चक्कर में थे। अपने उस पुत्र के वियोग से डाक्टर साहब छः महीने दीवाने से रहे, उनके शोक का क्या कहना! डाक्टर साहब का मत है कि हमारा सारा परिवार प्राकृतिक चिकित्सा के कारण ही बचा है।

प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कार

औषधियों द्वारा रोग-निवारण की प्रत्येक चेष्टा मनुष्य के शरीर के विरुद्ध युद्ध के सिवा और कुछ नहीं है।

—डाक्टर ट्रेल एम० डी०

लोग हर गाँव में एक दवाखाना होने की माँग करते हैं, लेकिन यह ईश्वर की कृपा ही है कि अब तक ऐसा नहीं हुआ। दवाखाने खुल जाने पर पैसे बाहर जायँगे और रोग दस गुने बढ़ जायेंगे। डाक्टर जिस घर में प्रवेश कर जाता है, उसका पिंड फिर वह नहीं छोड़ता।

—विनोबा

प्राकथन—जिन लोगों ने बचपन से यही संस्कार पाया है कि दवाई बिना रोग नहीं जाता, जो तरह-तरह की औषधियाँ और इन्जेक्शन आदि लेते रहते हैं, तो चाहे उन्हें अनेक बार बहुत कष्ट भी भोगना पड़े, और वे अस्वस्थ भी बने रहें, उन्हें यह विश्वास होना कठिन है कि मिट्टी, पानी, हवा, धूप आदि के उपचार से ही शरीर की विविध प्रकार की व्याधि हट सकती है। जब कभी ऐसे आदमी इलाज करते-करते उकता जाते हैं, और निरोग नहीं होने पाते तब ही वे प्राकृतिक चिकित्सा कराने की बात सोचते हैं। उनका विचार होता है कि और कोई उपाय नहीं है तो इसी का प्रयोग करके देखें शायद भाग्य से कुछ लाभ हो ही जाय। इन लोगों को अपनी प्राकृतिक चिकित्सा कराने से जो सुखदायी अनुभव होता है तो वे इस पद्धति से बड़े प्रभावित होते हैं, उन्हें बहुत आश्चर्य होता है कि प्रकृति के दिये; बहुत ही साधारण या नगण्य समझे जाने वाले पदार्थ इतने गुणकारी हो सकते हैं, और ये ऐसा चमत्कार कर देते हैं।

यहाँ हम डाक्टर किशन लाल जी के उन प्रयोगों में से कुछ का वर्णन करते हैं जो पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त (भारत के विभाजन से पहले) में किये गये। वह प्रदेश बहुत ठंडा है। वहाँ विशेष अस्पताल आदि नहीं थे। इसलिए वहाँ रोगी सभी प्रकार के और बड़ी संख्या में आते थे।

हाथ कटवाना न पड़ा—एक बार जब डाक्टर साहब नौशेरा में थे, एक वृद्ध सज्जन इनके पास अट्ठारह साल की एक लड़की को लेकर आये जिसका इलाज करते समय अस्पताल वालों ने एक हाथ काट दिया था, और दूसरा भी हाथ काटने की बात सोच रहे थे। डाक्टर साहब के कहने से उन्होंने हल्के नीले रंग की बोतल में प्राकृतिक (पहाड़ी) बर्फ डाल कर उसे तीन घंटे धूप में रखा और उसके पानी से हाथ धोते रहे। आठ दिन में लड़की ठीक हो गयी। इस समय उसे उपवास कराया गया था, और भूख लगने पर फलों का रस दिया गया था।

इस लड़की का समाचार पाकर श्री हरिसहाय गोटे वाले की स्त्री डाक्टर साहब के यहाँ आयी। अस्पताल वालों द्वारा उसका भी हाथ काटे जाने की बात थी। डाक्टर साहब की चिकित्सा से वह स्त्री एक सप्ताह में ठीक हो गयी।

क्षय रोग की आशंका वालों का इलाज—नौशेरा में डाक्टर साहब के पास पेशावर से लाला संतराम मोहल्लेदार भी आये, जिन्हें जीने की आशा न थी, अस्पताल वालों ने उन्हें टी० बी० (क्षय रोग) का रोगी बताया था। डाक्टर साहब ने उनका इलाज करना स्वीकार किया तो आस-पास वाले अन्य डाक्टर इनसे बहुत नाराज हुए। पर श्री संतराम जी दो माह के इलाज के बाद स्वस्थ हो गये तो सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। और उनकी इस चिकित्सा पद्धति में श्रद्धा हो चली।

नौशेरा में श्री भीमसेन एक नामी (प्रसिद्ध) हकीम थे। उनकी लड़की कृष्णा लीला को टी० बी० तीसरे दर्जे में थी। उसके पेट में फोड़ा

भी था। उसे पेशावर के मेओ अस्पताल में भर्ती किया था। तीन माह के बाद वहाँ के डाक्टर ने उसे यह कह कर निकाल दिया कि कि तीन दिन में इसके पेट का फोड़ा फूटते ही यह मर जायगी। डाक्टर साहब उस लड़की की माँ का इलाज करने के लिए उनके घर गये तो उसने भी इनके द्वारा चिकित्सा कराना शुरू कर दिया। इससे वह तीन माह में अच्छी हो गयी। उसकी उम्र सोलह साल की थी और उसका वजन केवल ३८ पौंड रह गया था। उसके एक बच्ची हुई थी, वह मर गयी थी। पीछे कृष्ण लीला बीमार हो गयीं, टट्टी या पेशाब भी रुक गया। उसका स्नान भी बन्द हो गया था। वह जो खाती थी, उलटी हो जाती थी। यह अवस्था नौ महीने रही। प्राकृतिक चिकित्सा से उसे खाना हज्म होने लगा; यहाँ तक कि उसकी फल और दूध की खुराक तेरह सेर तक पहुँच गयी। तीन माह बाद उसका वजन ११८ पौंड हो गया था और वह पहचानी भी नहीं जाती थी।

निमोनिये का इलाज ठंडी हवा से—नौशेरा में श्री भगवंत सिंह डिप्टी कमिश्नर के लड़के को निमोनिया हो गया। वह ढाई साल का था। कई बड़े-बड़े डाक्टरों ने उसका इलाज किया पर उसे आराम नहीं हुआ। रात के ग्यारह बजे डाक्टर किशन लाल जी को बुलाया गया। बड़े जोर की सर्दी पड़ रही थी, महीना दिसम्बर या जनवरी का था। पूर्णमासी का चन्द्रमा सिर पर था। जब डाक्टर साहब वहाँ पहुँचे तो बच्चे को बुखार १०३॥ डिग्री था इन्होंने उसका इलाज ठंडी हवा से किया। उसके सब कपड़े उतरवा दिये और उसे चाँदनी रात में खुली छत पर दरी बिछा कर उस पर लिटा दिया। ४५ मिनट बाद उसका बुखार उतर गया, और सवेरे तक वह बिल्कुल ठीक हो गया।

गठिया और हिचकी का रोगी—सदर बाजार के लाला मनोहर लाल कबाड़ी को बादी गठिया की इतनी तकलीफ बढ़ गयी थी कि उनके मरने की आशंका हो चली थी। अन्त में डाक्टर साहब को बुलाया

गया। रात के बारह बजे थे। उनकी प्राकृतिक चिकित्सा की गयी। ठंडे पानी में आधे घन्टे के कटि-स्नान से उसे आराम मिला और अच्छी नींद आयी। सवेरे उठा तो उसकी तबियत ठीक थी। पीछे उसका डेढ़ माह दूध-कल्प किया गया। उससे वह खूब हृष्ट-पुष्ट हो गया। इसे देख कर लोगों को आश्चर्य हुआ; उनकी प्राकृतिक चिकित्सा में श्रद्धा बढ़ना स्वाभाविक ही था।

डाक्टर परिवार के रोगी की प्राकृतिक चिकित्सा—नौशेरा स्टेशन पर विद्या नाम की लड़की थी। उसके पिता नामी डाक्टर थे, और उसके भाई भी डाक्टरी करते थे। विद्या को टाइफाइड अर्थात् मोती-झरा हुआ, साढ़े तीन माह हो गये। उसके जीने की आशा न रही। उसकी प्राकृतिक चिकित्सा शुरू की गयी, उस समय १०४ डिग्री बुखार था जो बना ही रहता था। पन्द्रह दिन के इलाज से वह खूब खाने लग गयी और अच्छी होकर स्कूल में पढ़ने को जाने लगी। इससे उसके पिता और भाई एलोपेथी पद्धति वाले होने पर प्राकृतिक चिकित्सा को बहुत मानने लगे। उन्होंने पीछे कई रोगी इलाज के लिये डाक्टर किशनलाल जी के पास भेजे।

सर्दी में छोटे बच्चे के सिर पर ठंडी पट्टी—लाला दीवानचन्द चाय वाले नौशेरा छावनी में बड़े प्रतिष्ठित दुकानदार थे। उनके छोटे बच्चे का, जो दस दिन का होगा, सिर गल गया। उन्होंने डाक्टर साहब को बुलाया। सर्दी बहुत जोर की थी, उस मौसम में इतने छोटे बच्चे के सिर पर मिट्टी की ठंडी पट्टी लगाना बड़े ही साहस का काम था। पर, डाक्टर साहब ने अपने अनुभव के बल पर यही प्रयोग किया। सवेरे तक तीन बार पट्टी बदली गयी। बच्चे को बुखार तेज था, उसमें आराम हुआ। तीन-चार दिन बाद बच्चे का सिर साफ नजर आने लगा। कुछ दिन बाद बाल आने लगे, पीछे तो उसका सिर ठीक होकर बालों से भर गया।

गर्भवती स्त्री का उपचार—लाला ज्ञानचन्द (उपयुक्त श्री दीवानचन्द के भाई) की स्त्री गर्भवती थी, उसे गर्भ का नवाँ महीना था। उसे बड़े जोर का, १०५॥ डिग्री का, बुखार हो गया। उसे किसी भी उपचार से लाभ नहीं पहुँचा। डाक्टर साहब ने प्राकृतिक चिकित्सा का नेट-शीट-पेक प्रयोग किया। इससे उसका बुखार जाता रहा और वह दो तीन दिन में ठीक हो गयी। पूरे समय पर उसके स्वस्थ बच्चा हुआ।

जब इन्जेक्शन असफल रहे और पानी ने काम किया—लाला दीवानचन्द जी के बहनोई कृष्णलाल जी को बुखार १०५॥ डिग्री का हो गया था। डाक्टर गुरुबख्स सिंह एम० बी० बी० एस० का इलाज आरम्भ किया गया। तीसरे दिन बुखार चला गया। तब इन्जेक्शन इस लिए दिये गये कि बुखार रुका रहे, अर्थात् फिर न आये। पर बुखार हो ही गया। अब बड़ी चिन्ता हुई। कोई उपाय समझ में नहीं आता था। आखिर डाक्टर किशनलाल जी को बुलाकर प्राकृतिक चिकित्सा करायी। इन्होंने पानी से इलाज किया, और वह ऐसा सफल हुआ कि अन्य चिकित्सक चकित रह गये। १५ मिनट में ही बुखार चला जाने और पसीना जोर से आने से घर वालों ने घबराकर इन डाक्टर साहब को फिर बुलाया। इन्होंने उनका समाधान कर दिया। रोगी क्रमशः ठीक हो गया।

डाक्टर शिष्य बन गया, परित्यक्त महिला गृह-स्वामिनी बनी—एक बार रिसालपुर छावनी से एक डाक्टर इन डाक्टर साहब के पास २१ वर्ष की आयु वाली वृन्दा नाम की लड़की को लाये। इन्होंने कहा कि मैंने तीन सौ रुपये में इस लड़की के इलाज का ठेका लिया था। चार महीने हो गये, यह ठीक नहीं हुई। मेरा कथन है कि अब यह ठीक होगी ही नहीं, और अगर कोई इसे ठीक कर दे तो मैं उसका शिष्य हो जाऊँगा। अपनी दुकान फूँक दूँगा और इसे दुगनी रकम वापिस कर दूँगा।

डाक्टर साहब के पास उस समय चिकित्सा के लिए यथेष्ट स्थान न था। इन्होंने लड़की का वजन ले लिया और उसे कटि-स्नान, मिट्टी की पट्टी और मेहन स्नान आदि की विधि बता दी। लड़की यह सब उपचार अपने घर पर करने लगी। एक सप्ताह बाद वह इनके पास आयी, उसका वजन किया गया तो दस पौंड बढ़ा हुआ मिला। इस पर डाक्टर साहब को बड़ा आश्चर्य और अविश्वास-सा हुआ। किन्तु लड़की ने कहा कि मैं इस सप्ताह पहले से बहुत अच्छी रही हूँ, मुझे बुखार दिन-दिन कम हो रहा है, और खाना-पीना भी अच्छा लगता है। मेरे शरीर में स्फूर्ति है। इसलिए मेरा वजन जरूर बढ़ा है। अस्तु, डाक्टर साहब ने उसे आगे का कार्यक्रम बता दिया। अगले सप्ताह वह आयी तो उसका वजन दस पौंड और बढ़ा हुआ मिला। अब तो डाक्टर साहब को पिछली बार के वजन बढ़ने की बात पर भी अधिक विश्वास हुआ और इन्होंने बड़े उत्साह से उसका इलाज जारी रखा। इससे उसका वजन क्रमशः बढ़ता रहा, यहाँ तक कि दो माह में साठ पौंड बढ़ गया और वह स्वस्थ हो गयी।

इस लड़की के पति श्री मिही लाल लाहौर में एक चमड़े का कारखाना चलाते थे। वह बड़े धनी और सम्पन्न थे, उनके नाम की एक स्ट्रीट (बाजार) भी थी। वह अपनी पत्नी को स्थायी रूप से रोगी रहती देख कर हमेशा के लिए उसके पीहर रिसालपुर छोड़ गये थे। उन्हें जब उसके रोगमुक्त होने का समाचार मिला तो उन्होंने डाक्टर साहब को बहुत धन्यवाद दिया और अपनी पत्नि को अपने यहाँ लाहौर ले गये। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा से वृन्दा देवी को वह दाम्पत्य जीवन प्राप्त हुआ जिसकी उसे अपने पति की स्वार्थमय, अनुदार तथा हीन मनोवृत्ति के कारण कुछ आशा न रही थी। आह! समाज में न मालूम कितने मिहीलाल हैं, जो अपनी पत्नि को केवल अपने सुख के लिए रखते हैं। जब पत्नि बीमार हो जाती है और उसके रोग मुक्त होने की आशा नहीं रहती तो कितने फीसदी आदमी हैं, उस दशा में भी उसके प्रति सेवायुक्त कर्तव्य का पालन करते हैं।

अच्छा, अब उन एलोपेथिक डाक्टर महोदय की बात लें, जिन्होंने पहले वृन्दादेवी के इलाज का ठेका लिया था। वे श्री किशनलाल अग्रवाल के पास आये और प्राकृतिक चिकित्सा की प्रशंसा करते हुए इनसे कहने लगे—'मैंने जो प्रतीज्ञा की थी, उसके अनुसार मुझे अपनी दुकान फूँक देनी चाहिए। परन्तु अगर मैं ऐसा करूँ तो मेरा निर्वाह कैसे होगा! मैं आप से क्षमा-याचना करता हूँ और उस प्रतीज्ञा को वापिस लेता हूँ। रही बात, आपका शिष्य होने की। वह तो मुझे स्वीकार ही है। मैं प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा नहीं जानता था अब मुझे इसका चमत्कार मालूम हुआ।'

मलेरिया बुखार की आश्चर्यजनक चिकित्सा—पेशावर के डेरीफार्म में श्री बाबूलाल नाम के हेडक्लर्क ने इनके पास दमे का इलाज कराया था, इससे उसे प्राकृतिक चिकित्सा पर विश्वास हो गया। उसके लड़के ओमप्रकाश को मलेरिया बुखार हुआ। जब कई दिन अन्य डाक्टरों का इलाज कराने से कुछ लाभ न हुआ तो ओमप्रकाश को उसकी पत्नि सहित इन डाक्टर साहब के पास भेज दिया। ये उसे अपने सेनिटोरियम (बेला) में ले गये, जो नौशेरा छावनी के कम्पनी बाग के पास था, और जहाँ उन दिनों और भी कई रोगियों का इलाज हो रहा था। उसे दरिया के पानी में प्राकृतिक स्नान कराया गया तो बुखार १०२ से १०३ हो गया, फिर स्नान कराया तो १०४ और उसके बाद क्रमशः १०५ और १०५॥ हो गया। इस पर सब लोग डाक्टर साहब पर बिगड़ने लगे। उन्होंने कहा कि बुखार बराबर बढ़ता जा रहा है, और आप हठ करके उसे ठंडे पानी में नहला रहे हैं। यह सुन कर ओमप्रकाश की पर्दा करने वाली पत्नि ने भी अपना विरोध और झुंझलाहट प्रगट की। डाक्टर साहब ने सब को समझाया कि दरिया का पानी कम ठंडा है और बुखार जोर पर है। इस पर सब ने मानो विद्रोह करने की ही ठान ली।

संयोग से उसी समय जोर से आंधी आ गयी और ओले पड़ने लगे। हवा बहुत ठंडी हो गयी। सब रोगी अपनी-अपनी कुटियाओं

में जा घुसे; केवल डाक्टर साहब, ओमप्रकाश और उसकी पत्नि ही उस जगह रहे। ओले की हवा लेने से ओमप्रकाश दो मिनट बाद ही कहने लगा कि अब तो सर्दी लगने लगी। देखने से मालूम हुआ कि नब्ज स्वाभाविक रूप में है, शरीर का तापक्रम ९८॥ है। पर ओम प्रकाश को यह चिन्ता हुई कि बुखार १०५॥ से एक दम ९८॥ पर आ गया, यह अच्छा नहीं हुआ। वैसे उसे अपनी तबियत ठीक मालूम हुई। डाक्टर साहब ने उसे प्रकृति का यह चमत्कार समझाया और बताया कि इस प्रकार एक दम बुखार उतर जाने से कोई हर्ज नहीं, यह अच्छा ही है। फिर तो ओमप्रकाश में ऐसी हिम्मत हो गयी कि वहाँ कोई तांगा आदि न मिलने पर वह पैदल ही और खुशी-खुशी अपने घर आ गया, जो वहाँ से लगभग दो मील दूर था।

ओमप्रकाश के पिता श्री बाबूलाल, तथा अन्य जिन-जिन सज्जनों को इस घटना की जानकारी हुई वे डाक्टर साहब की दृढ़ता की प्रशंसा करने लगे और प्राकृतिक चिकित्सा में दृढ़ विश्वास करने लगे। हाँ, उस दिन यदि प्रकृति ने ओलों की वर्षा करके बहुत ठंडी न की होती तो ओमप्रकाश का बुखार उतरने में देरी लगती; यों उतरता तो जरूर ही। डाक्टर साहब को अकस्मात प्रकृति की उक्त सहायता मिलने पर बड़ा हर्ष हुआ।

आपरेशन से बची, खर्च से भी बची—रावलपिंडी में एक अध्यापिका मरदान छावनी में ईसाई मिस के पास पेट का आपरेशन कराने के लिए डेढ़ माह की छुट्टी लेकर आयी। परन्तु मिस उस समय किसी कार्य वश विलायत गयी हुई थी। अध्यापिका निराश होकर लौट रही थी कि उसे डाक्टर साहब द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा करने की बात मालूम हुई। इस पर वह इनके पास आयी। इन्होंने देखा कि पेट में एक बड़ी गांठ है, और पेट बहुत कड़ा है। इन्होंने चिकित्सा आरम्भ करते हुए उसे उपवास करने का आदेश किया, तो उसने कहा कि सिक्ख धर्म में उपवास करना मना है। लेकिन आखिर, वह समझाने से मान गयी। उपवास की अवधि पहले से निश्चित नहीं की गयी थी।

यह कह दिया था कि ठीक भूख लगने पर खाना दिया जायगा। इस प्रकार उपवास का क्रम एक सप्ताह चला। इस बीच में पेट पर मिट्टी की पट्टी लगायी जाती थी, एनीमा दिया जाता था। प्राकृतिक स्नान और कटि-स्नान कराया जाता था। पीने के लिए सादा पानी दिया जाता था। सारे दिन वेला (सेनिटोरियम) में ठहर कर शुद्ध ताजी हवा ली जाती थी। भूमि पर विना कपड़ा विछाये सोया जाता था।

सातवें दिन देखा तो पेट में कोई गाँठ आदि न थी। पेट साफ था। अध्यापिका आश्चर्य पूर्वक कहने लगी—'कैसा अच्छा हुआ, आपरेशन से बची, खर्च से भी बची। डेढ़ माह खाट पर पड़ा रहना पड़ता। प्राकृतिक चिकित्सा की कहां तक प्रशंसा की जाय।'

अब दवाई का नाम न लूंगी—एक वार आर्य समाज स्कूल की मुख्य अध्यापिका (हेड मिस्ट्रेस) के हाथ-पाँव और सारे वदन में ही ऐसी खुजली हो गयी कि उससे स्कूल में पढ़ाना तो दूर रहा, वहाँ जाकर वैठते भी नहीं वनता था। उसने दो माह वड़े-वड़े डाक्टरों से इलाज कराये, कितने ही इन्जेक्शन लिए पर रोग वढ़ता ही गया। उसकी प्राकृतिक चिकित्सा की गयी—कटि-स्नान, भाप-स्नान और प्राकृतिक खान-पान। वह क्रमशः ठीक होने लगी, पन्द्रह दिन में पूर्ण स्वस्थ हो गयी। उसे वहुत ही अचम्भा हुआ कि ऐसी कठिन वीमारी विना दवाई के केवल मिट्टी और पानी के प्रयोग से कैसे चली गयी। वह कहने लगी कि अव मेरा औषधियों पर से विश्वास विल्कुल उठ गया है। मैं उनका नाम न लूंगी। वे तो वीमारियाँ वढ़ाने वाली हैं। प्राकृतिक चिकित्सा की वात मेरे गले नहीं उतरती थी, पर अव स्वयं इससे होने वाले चमत्कार का अनुभव करके मेरी इस पर वहुत ही श्रद्धा हो गयी है। मैं अपने क्षेत्र में इसका खूव प्रचार करूँगी।

१०७ डिग्री के वुखार में वरफ के पानी का स्नान—एक वार डाक्टर साहव की सराय में जहाँ कुछ किरायेदार रहते थे। नीकामल नाम का एक गरीव आदमी वीमार हुआ। उसका दामाद सरकारी

अस्पताल में डाक्टर था, उसने उसका इलाज किया, पर कुछ आराम आराम नहीं हुआ। यहाँ तक कि एक दिन उसे बुखार १०७ डिग्री हो गया। उसकी जीभ पर काँटे से हो गये। उसने डाक्टर किशन लाल जी से चिकित्सा के लिए कहा। इन्होंने नीकामल को टब में बरफ डाल कर उसके पानी में बैठा दिया। पन्द्रह मिनट बाद बुखार १०२ डिग्री रह गया। अगले दिन रोगी को बहुत आराम हो गया। कमजोरी तो रही, वह धीरे-धीरे दूर हो गयी।

---

[६]

प्राकृतिक चिकित्सालय में

चिकित्सा की साधारण विधि में रोगी बीमार पड़ने पर डाक्टर के पास दौड़ता है और वह दवा दे देता है; उससे शरीर में रोग के कारण प्रकट हुए असाधारण लक्षणों के मिट जाने पर डाक्टर का काम समाप्त हो जाता है। साथ ही बीमार और डाक्टर का सम्बन्ध, और उसके विषय में उसकी दिलचस्पी भी खत्म हो जाती है। दूसरी ओर, प्राकृतिक चिकित्सा का उपचारक रोगी को, उसके रोग के लिए, कोई जड़ी बूटी नहीं देता, बल्कि अपने बीमार को रहन-सहन का वह तरीका सिखाता है कि जिससे वह अपने घर में रह कर अच्छा जीवन बिता सके और फिर कभी बीमार न पड़े। वह अपने रोगी के रोग-विशेष को मिटा कर ही बैठ नहीं रहता।

—गाँधी जी

नौशेरा (सीमाप्रान्त) में रहते हुए डाक्टर किशन लाल कभी-कभी अपने घर श्रीमाधोपुर (राजस्थान) आते रहते थे। सन् १६४७ में भारत का विभाजन होने पर तो ये स्थायी रूप से नौशेरा छोड़ कर श्री माधोपुर आ गये।

डाक्टर साहब श्रीमाधोपुर में—यहाँ ये निजी तौर से रोगियों की प्राकृतिक चिकित्सा करते रहे। कभी-कभी आवश्यकता होने पर ये चिकित्सा के लिए बाहर भी जाते रहे। सन् १६५० तक चिकित्सा करने की संगठित व्यवस्था नहीं थी। इस समय के उपचारों के उदाहरण स्वरूप एक का वर्णन आगे किया जाता है। एक बार डाक्टर साहब श्रीमाधोपुर से चौमूं गये तो श्री लक्ष्मीनारायण ने इनसे कहा कि हमारा छोटा बच्चा वासुदेव—जिसका जन्म संस्कार और पालन-पोषण आपके बताये

प्राकृतिक ढंग से किया गया है—कई दिन से रोता है और प्राकृतिक उपचार करने पर भी उसका रोना बन्द नहीं होता। डाक्टर साहब ने बच्चे को देखा तो उनसे कहा कि बच्चा कुछ माँगता है, आप इसकी माँग पूरी कीजिये। लक्ष्मीनारायण जी ने कहा कि यह तो अभी दो माह का नहीं, इसके माँगने की बात आप क्या कहते हैं। अगर यह कुछ मांगे और हम इसकी बात समझें तो इसे सब कुछ देने को तैयार हैं। डाक्टर साहब ने कहा कि यह रुपये-पैसे की चीज नहीं मांगता। यह तो अमूल्य (बिना मूल्य की अर्थात् मुफ्त की भी, और बहुत मूल्यवान अर्थात् उपयोगी भी) ताजी ठंडी हवा मांगता है। आप इसे बाहर सुलाइये। बाहर आने पर बच्चे ने रोना बन्द कर दिया। वह रात भर ठंडी हवा-दार जगह में आकाश के नीचे आराम से सोता रहा और उसने सवेरे मुस्कराते हुए अपनी मा का दूध पिया। अवश्य ही उसने अपनी मूक भाषा में प्राकृतिक पथ को धन्यवाद दिया होगा। घर वालों की खुशी का क्या ठिकाना। श्री लक्ष्मीनारायण को वह बात अब तक याद है, वे जब डाक्टर साहब से मिलते हैं तो कहा करते हैं कि बच्चा कुछ मांगता है, जो वह मांगे, उसे दो।

प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना—जयपुर के सेठ सोहन लाल जी दूगड़ को कुछ वर्षों से 'साइटिका' पेन (एक प्रकार का वायु विकार) सता रहा था। कई बड़े-बड़े डाक्टरों से इलाज कराने पर भी उनका कष्ट नहीं गया था। १५ सितम्बर १९५० को वे घूमते हुए गांधी नगर (जयपुर) आये, और श्री रामेश्वर अग्रवाल से मिलने पर कहने लगे कि आप प्राकृतिक चिकित्सा की बड़ी तारीफ किया करते हो, मेरा इलाज करने वाला कोई व्यक्ति आपके ध्यान में हो तो बताओ। रामेश्वर जी डाक्टर किशन लाल को अच्छी तरह जानते थे। सन् १९४६ में उनकी पत्नि सख्त बीमार हुई तो उनकी प्राकृतिक चिकित्सा उन्हीं डाक्टर साहब के द्वारा हुई थी। जिन लक्ष्मीनारायण जी के पुत्र बासुदेव के इलाज की बात ऊपर कही गयी है, वे रामेश्वर जी के भाई ही हैं। अस्तु, दूगड़ जी की बात सुनकर रामेश्वर जी ने उनसे कहा कि प्राकृ-

तिक चिकित्सा तो मेरे ध्यान में है पर आप बड़े-बड़े डाक्टरों से संपर्क रखने वाले हो, मेरा बताया हुआ साधारण सा दिखायी देने वाला व्यक्ति आपको शायद हो जँचे। किन्तु श्री दूगड़ जी का बहुत आग्रह होने पर रामेश्वर जी ने श्रीमाधोपुर से डाक्टर किशनलाल अग्रवाल को बुलाया। कुछ सोच विचार के बाद दूगड़ जी की चिकित्सा आरम्भ हुई। इसमें कई तरह की रुकावटें आयीं। मुख्य बाधा यह थी कि दूगड़ जी के घरवाले, खास कर उनकी पत्नि को यह चिकित्सा पद्धति बड़ी अजीब और बहुत घटिया दर्जे की लगती थी। पर दूगड़ जी ने इस चिकित्सा को जारी रखा और उन्हें आराम भी हो गया। वे बहुत प्रसन्न हुए और उनके सुझाव तथा आर्थिक सहायता के आश्वासन से गांधी जयन्ती २ अक्टूबर १,६५० के दिन गांधीनगर में जहाँ कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था और गांधी विचारधारा के अनुसार कोई न कोई प्रवृत्ति चलाने का बहुत लोगों की इच्छा थी—प्राकृतिक चिकित्सालय का कार्य शुरू किया गया।

प्राकृतिक चिकित्सालय का कार्य—प्राकृतिक चिकित्सा के लिए एक मकान किराये पर लिया गया और बहुत ही साधारण साधनों से इसका कार्य आरम्भ किया गया। संयोग से इस चिकित्सालय को अपनी स्थापना के समय से डाक्टर किशनलाल जी के साथ एक सेवा भावी तथा अनुभवी वैद्य श्री शम्भूप्रसाद जी का सहयोग प्राप्त हो गया, जिनके बारे में आगे लिखा जायगा। चिकित्सालय को कार्य करते हुए अब पाँचवा वर्ष चल रहा है। इस बीच में यहाँ लगभग चार सौ पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों का भिन्न-भिन्न रोगों का इलाज हुआ है। अनेक प्रकार के अनुभव—प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कार ही कहना चाहिए—सामने आये हैं। यहाँ किये जाने वाले कितने ही इलाज हमारे सामने हुए हैं, या ऐसे व्यक्तियों की जानकारी में हुए हैं जिनसे हमारा सम्पर्क है। उनमें से कुछ का भी खुलासा वर्णन करने से भी एक खासी बड़ी पुस्तक बन सकती है। पर हमें तो उनकी झाँकी मात्र देकर मिट्टी, पानी, हवा, धूप की महिमा का दिग्दर्शन मात्र कराना अभीष्ट है।

महावीरप्रसाद जी जैन को दमे की बीमारी थी—फतेहपुर के श्री महावीरप्रसाद जैन पुराने दमे से पीड़ित थे। वे इलाज के लिए गोरखपुर जाने वाले थे, पर पीछे ११ अक्टूबर १९५० को उन्होंने यहाँ ही इलाज कराने का निश्चय कर लिया। वे रात का समय काटने के लिए एक अंग्रेजी दवाई लिया करते थे, यहाँ आने पर वह दवाई बन्द करके प्राकृतिक उपचार किया गया। उससे उनको शीघ्र ही आराम हो गया और उसके बाद उन्हें दमे का दौरा नहीं हुआ। उन्होंने प्रसन्न होकर इस संस्था को सौ रुपये की सहायता की और इसके स्थायी सदस्य बन गये।

सरला कुमारी जिसे क्षय रोग के लक्षण थे—इस चिकित्सालय के मन्त्री श्री रामेश्वर अग्रवाल की भतीजी सरला कुमारी का इलाज इन डाक्टर साहब की निगरानी में पहले श्रीमाधोपुर में हुआ था, पीछे रींगस आने पर उसका क्रम कुछ ठीक न रहने से वह १ जनवरी १९५१ को यहाँ लायी गयी। उसे टी० बी० (क्षय) के सब लक्षण थे। पन्द्रह दिन इलाज कराने पर वह ठीक होकर यहाँ से गयी, उसके बाद वह घर पर उपचार कार्य करती रही। वह अब तक दुरुस्त है।

रघुवर दयाल जी गोयल का वजन घटा—बीकानेर के श्री रघुवर दयाल गोयल (खाद्य मंत्री, राजस्थान) का वजन २०० पौंड था, शरीर मोटा था। इन्होंने अपना वजन कम करने के लिए कई उपचार कराये, पर सफलता न पायी। १ जनवरी १९५१ से इनकी यहाँ चिकित्सा की गयी। तीन दिन उपवास कराकर इन्हें पत्तादार सागों का रस और रसीले फल दिये गये। ठंडे गरम स्नान, कटि-स्नान, एनीमा दिया गया। सर्दी का मौसम था। इनके सब कपड़े उतार कर इन्हें प्रकाश और वायु-स्नान भी कराया गया, धूप-स्नान पर तो विशेष जोर दिया ही गया। पन्द्रह दिन में वज़न घट कर १७५ पौंड रह गया। अब तो वह लगभग १४५ पौंड ही है। शरीर बहुत हल्का है। ये प्राकृतिक

चिकित्सा से बहुत प्रभावित हैं, और अपने मिलने वालों से इसी चिकित्सा पद्धति को अपनाने का आग्रह करते रहते हैं।

श्री सिद्धराज ढंडा और उनके पिता की चिकित्सा - जयपुर निवासी श्री सिद्धराज ढंडा टायफाइड से पीड़ित थे, नाड़ी गिरी हुई थी, तापमान९७.४ था। इनका उपचार प्राकृतिक ही था, पर उससे इन्हें यथेष्ट लाभ नहीं हो रहा था। उस पर विचार करने और आवश्यकता हो तो कुछ परिवर्तन करने का सुझाव देने के लिए १५ जनवरी १९५१ को डाक्टर किशनलाल बुलाये गये। पहले ढंडाजी को रोजाना फुट बाथ (पैर-स्नान), स्पंज बाथ, एनीमा दिया जाता था। खाने को मुनक्का का पानी दिया जाता था। डाक्टर साहब ने इसे बन्द करके धूप-स्नान आरम्भ किया। खाने को केवल सन्तरा दिया गया। पांच सात दिन बाद जब ये दस-बारह सन्तरे लेने लगे और इनके शरीर में कुछ ताकत आयी तो धूप सेवन की सुविधा के लिए ये दुर्लभ भवन में चले गये, कारण इनके मकान में धूप सिर्फ दोपहर को ही आती थी। नये मकान में सिद्धराज जी बारह दिन रहे। ये धीरे-धीरे बढ़ाकर ३०-३५ सन्तरे लेने लग गये। इनका वजन क्रमशः बढ़ता रहा, कई दिन तो रोजाना एक पौंड बढ़ा। पीछे स्वच्छ वायु की दृष्टि से ये प्राकृतिक चिकित्सालय में ही आ गये और स्वस्थ होने तक यहाँ रहते रहे। ढंडा जी को दंड बैठक आदि व्यायाम पसन्द न था। डाक्टर साहब के सुझाव पर इन्होंने चक्की चला कर आटा पीसने का उत्पादक श्रम किया। पीछे ये इसके बड़े समर्थक और प्रशंसक हो गये।

सिद्धराज जी के पिता श्री गुलाबचन्द जी श्वास रोग से पीड़ित थे। ये एलोपेथी और आयुर्वेदिक चिकित्सा करा चुके थे। उससे आराम होते न देख कर, तथा सिद्धराज जी को प्राकृतिक चिकित्सा से लाभ पहुँचने का प्रत्यक्ष अनुभव करके इन्होंने भी यही चिकित्सा करायी। सर्दी का मौसम था, और बहुत ठंड थी, इससे ये कपड़े नहीं उतारते थे, क्रमशः इनका विचार बदला और ये उघाड़े बदन खूब ठंडी

हवा का सेवन करने लगे। इन्हें धूप-स्नान और ठंडे जल का स्नान कराया जाता था। इससे इन्होंने स्वास्थ्य लाभ किया।

रामनिवास जी की पेट की असह्य पीड़ा—जयपुर स्टेशन पर लकड़ी-गोदाम के मालिक श्री पूरणमल २७ जून १९५२ को अपने पुत्र रामनिवास (उम्र ३५ साल) को लेकर आये जिनके पेट में दो दिन से बड़ा ही दर्द था, अपान वायु नहीं निकलती थी टट्टी की तो बात ही क्या ! इनका पेट फूला हुआ होने से असह्य कष्ट था। इनकी इस दशा को देखकर इनके सभी रिश्तेदार आदि बहुत चिन्तित थे। इन्हें पहले भाप-स्नान और फिर २०मिनट कटि-स्नान दिया गया। थोड़ी देर बाद इन्हें बड़े जोर का दर्द हुआ। तब पेड़ू का गरम-ठंडा स्नान दिया गया। इस पर अपान वायु बड़ी आवाज के साथ खारिज हुई। इससे राम निवास जी के स्वस्थ होने की आशा हुई। पर फिर जोर का दर्द हो गया। तब उन्हें जमीन में करीब डेढ़ फुट गहरा गड्ढा खोद कर उसमें लिटा दिया; केवल सिर मिट्टी से बाहर रहा। साढ़े तीन घन्टे बाद, टट्टी की हाजत होने पर उन्हें मिट्टी से बाहर निकाला गया। दस्त खूब जोर का हुआ और उसके साथ ही पेट का दर्द चला गया। रात को फिर एक बार टट्टी हुई, जिसमें बहुत बदबू थी। सबेरा होने पर उनकी तबियत ठीक हो गयी।

शीतल प्रसाद जी की मुट्ठी बन्द होने और खुलने लगी—रतनगढ़ के श्री श्यामसुन्दर लाल एडवोकेट यहाँ इलाज के लिए आये हुए थे, उनसे मिलने के लिए हनुमानगढ़ से उनके बहनोई शीतल प्रसाद पटवारी यहाँ आये। उनके हाथ को ऊंट ने काट कर जख्मी कर दिया था। उसका इलाज हो जाने पर भी अंगुलियाँ मुड़ नहीं सकती थीं, सीधी ही रहती थीं। तीन माह मालिश कराने पर वे कुछ नर्म पड़ीं, फिर भी मुड़ नहीं सकती थीं। गर्मी का मौसम था, डाक्टर साहब ने टीके पर से तपती हुई बालू मंगवाई और शीतलप्रसाद जी का हाथ एक खाली डिब्बे में रखवा कर उस पर डलवा दी। दस मिनट में हाथ पसीने से तर हो गया और बालू उस पर चिपक गयी।

बालू से हाथ निकाल कर उसे ठंडे पानी में डुबो दिया गया और धोकर निकाला गया। एक दम मुट्ठी बन्द होने और खुलने लग गयी। रोगी अपने इलाज के लिए एक-दो माह चिकित्सालय में ठहरने को तैयार था, उसे तत्काल ठीक हो जाने पर बहुत आश्चर्य और हर्ष होना स्वाभाविक ही था।

नानगी देवी की क्षय रोग की चिन्ता दूर हुई—१४ मार्च १९५१ को लालसोट से नानगी देवी (उम्र करीब १७ साल) अपने मामा के साथ यहाँ आयी। उसके विवाह को एक-डेढ़ साल हुआ था। उसके ससुराल वालों ने उसे टी० बी० (क्षय) की बीमारी होने से उसके पीहर भेज दिया था और पीहर में केवल उसके मामा ही थे। उसे बुखार तो था ही, खांसी इतने जोर की थी कि जरा भी चैन नहीं मिलती थी। यहाँ चिकित्सालय में क्षय के रोगी को लेने का नियम नहीं है, कारण इससे दूसरे रोगी भयभीत हो जाते हैं। अस्तु, चिकित्सालय के मंत्री से विचार करके विशेष दशा में नानगी देवी को दाखिल कर लिया गया। रात को उसे बाहर जमीन पर सुलाया गया। खाने को रसीले फल दिये गये। इस पर उसकी खांसी तो दो दिन में ही कम हो गयी, बुखार धीरे-धीरे कम हुआ। रोगी को कटि-स्नान और एनीमा दिया गया था और मिट्टी का प्रयोग किया गया था। पन्द्रह दिन में वह इतनी अच्छी हो गयी कि घर जाने का आग्रह करने लगी। आखिर उसे उसके घर भेज दिया गया।

मोतीझरे के भयंकर रोगी श्री भूरामल—श्रीमाधोपुर के पण्डित वंशीधर के साले के लड़के श्री भूरामल दो माह से मोतीझरे से पीड़ित थे। शरीर बहुत दुबला और रंग सफेद हो गया था। होश-हवास भी ठीक नहीं था, बेहोशी में कुछ बकने लगते थे। सुनना भी कम हो गया था। हालत बहुत ही खराब थी। धन्वंतरी औषधालय के वैद्य पूर्णानंद जी ने एक सप्ताह उनका इलाज करके देखा, पर कुछ सफलता न मिली। आखिर वे यहाँ १८ जून १९५१ को प्राकृतिक चिकित्सालय में आये। उन्हें रात दिन चालीस पचास बार टट्टी जाना रहता था, खून और

राध आती थी। कभी-कभी खांसी से भी खून आता था। यहाँ इलाज में उपवास करा कर कटि-स्नान और मिट्टी की पट्टी का प्रयोग हुआ। वे क्रमशः ठीक होने लगे। चार दिन में उन्हें टट्टी नियमित रूप से दिन में दो बार होने लगी। धीरे-धीरे रंग बदलने लगा। महीने भर में वह ठीक होकर चले गये। वे अब पहले से भी अधिक हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ हैं। अहा! प्राकृतिक चिकित्सा कितनी सुगम है, पर हम भूले हुए हैं, और इलाज के नाम पर औषधियाँ ले लेकर नयी-नयी बीमारियों के शिकार होते और मानव जीवन को दुःखमय बनाते हैं।

अनन्त बहिन का जापे का बुखार—सन् १९५४ के दिसम्बर माह की बात है। चिकित्सालय के मंत्री श्री रामेश्वर जी ने डाक्टर साहब से कहा कि रींगस में अनन्त बहन के लड़की हुई है वह चार दिन की है और अनन्त बुखार, खांसी तथा छाती के दर्द से पीडित है। डाक्टर साहब ने वहाँ जाकर रात को तीन बजे उसे देखा। तापमान १०४॥ डिग्री था। बुखार जापे का मालूम हुआ।* इन्होंने कहा कि अनन्त को ठंडे पानी में मेहन स्नान (सिट्स बाथ) देना चाहिए। मौसम सर्दी का था, अनन्त को गरम कपड़े पहने हुए भी ठंड लगती थी, वह रात को ग्यारह बजे और ठंडे पानी से स्नान लेने को राजी नहीं हुई। पर रामेश्वर जी तथा डाक्टर साहब के समझाने से मान गयी। उसे मेहन स्नान कराया गया। वह रात को सोयी तो उसे पसीना आया। सवेरे बुखार उतर गया। खांसी या दर्द भी न रहा। रामेश्वर जी को रात भर बड़ी चिन्ता रही थी, अब यह हाल जान कर बहुत ही प्रसन्न हुए। वे डाक्टर साहब से कहने लगे कि अनन्त को दसमूल का काढ़ा तो दे देवें, उसमें क्या हरज है। डाक्टर साहब ने कहा कि काढ़े में क्यों दो-चार पैसे खोते हो अनन्त अब अच्छी हो गयी है; प्रकृति पर विश्वास करना चाहिए।

---

*बारबार थोड़ी-थोड़ी सर्दी लगना, बदन मामूली गरम रहना, और ऊँचा बुखार होना, खाँसी और दर्द का रहना—ये जापे के बुखार के लक्षण होते हैं।

बालक एक बार बहुत सख्त बीमार पड़ गया। मुँह में झाग आ गये, हाथ-पैर अकड़ गये, पेट पर अफरा और दस्त बन्द हो गया। बेहोशी तो थी ही। इस प्रकार बालक के जीने की आशा न रही थी। ऐसी स्थिति में उसका इलाज डाक्टर किशनलाल जी ने प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से किया। तीन चार घंटे में उसे स्वास्थ्य लाभ हुआ।

शम्भू जी को प्राकृतिक चिकित्सा की प्रेरणा—श्री ताराचन्द जी अपने भतीजे के रोग-मुक्त होने से बहुत ही प्रभावित हुए और उन्होंने शम्भू जी को जो पत्र भेजा उसमें लिखा कि माली ने तो प्राकृतिक चिकित्सा से ही नया जीवन पाया है, हम तो निराश हो गये थे। 'टब वाले बाबा'—डाक्टर किशनलाल जी—ने इसे बचाया है। हम उनके बहुत ही कृतज्ञ हैं। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति कितनी उत्तम है। तुम भी इसका अनुभव प्राप्त करो।

शम्भू जी का निर्णय—शम्भू जी इस समय विजय-फार्मेसी में काम कर रहे थे। एक ओर सम्पतराम जी वैद्य ने इन्हें अलवर की कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में काम करने के लिए बुलाया था और इस सम्बन्ध में ये अलवर में श्री मास्टर भोलानाथ जी से मिल चुके थे, और वहाँ नियुक्ति की आशा हो गयी थी। दूसरी ओर इनके भाई का सुझाव तथा आग्रह प्राकृतिक चिकित्सा करने के लिए था। शम्भू जी को अपने निर्वाह के लिए कुछ आय की आवश्यकता थी। इन्होंने भाई को लिखा कि वर्तमान स्थिति में बिना आय के काम में लगना तो नहीं हो सकता। यदि निर्वाह की व्यवस्था हो जाय तो मैं प्राकृतिक चिकित्सा के कार्य को सहर्ष स्वीकार कर लूँ। इस बीच में श्री दूगड़ की सहायता से २ अक्टूबर १६५० को गांधीनगर (जयपुर) में प्राकृतिक चिकित्सालय स्थापित करने और उसके डाक्टर किशनलाल द्वारा संचालित होने का विचार हुआ, जिसके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। इस संस्था में एक सहायक कार्यकर्त्ता की आवश्यकता थी ही, उस पद

के लिए शम्भू जी की नियुक्ति होजाने से उनका एवं संस्था का दोनों का हित हुआ।

वैद्य जी प्राकृतिक चिकित्सालय में—शम्भू जी ने बहुत वर्षों तक वैद्य का जीवन बिताया था। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के कितने ही आदेश ऐसे हैं, जो सभी प्रकार के चिकित्सकों के लिए उपयोगी हैं। वैद्यों के लिए उसमें सेवा और त्याग का आदर्श रखा गया है। उसमें मनुष्य की दिनचर्या के लिए अच्छा पथ-प्रदर्शन किया गया है, भोजन को ही औषधि बता कर आदमियों को औषधि सेवन से यथा-सम्भव विरक्त किया है। तथापि आधुनिक काल में बहुत से वैद्य कहे और माने जाने वाले व्यक्तियों ने औषधियों को व्यापार की अर्थात् नफा कमाने की और धन पैदा करने की वस्तु बना रखा है। ऐसी दशा में वैद्यक सर्व साधारण जनता के लिए यथेष्ट उपयोगी नहीं रही है, कुछ दशाओं में तो उसके द्वारा लोगों के अहित ही अधिक होने की संभावना रहती है। इस प्रकार वैद्यक के गहरे संस्कार पाये हुए व्यक्ति के लिए प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त अपनाना काफी कठिन है। पर शम्भू जी ने प्राकृतिक चिकित्सक किशनलाल जी के पास रह कर तथा इस चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन और मनन करके यह कठिन कार्य करने में अच्छी सफलता पायी। कई बार जब डाक्टर किशनलाल जी चिकित्सालय से बाहर गये हुए रहे नये रोगियों की चिकित्सा प्रारम्भ करने का भार शम्भू जी पर ही आता रहा। ऐसे प्रसंगों पर उनका निर्णय ठीक ही साबित हुआ।

चिकित्सालय जैसी संस्थाओं को शैशव अवस्था में कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है,—खास कर जब आर्थिक साधन और कार्यकर्त्ताओं की कमी हो—यह जानकारों से छिपा नहीं है। ऐसे समय संस्था को चलाने में बहुत ही धैर्य, परिश्रम और त्याग चाहिए। रोगियों को सान्त्वना देने और उनका मन रखने में चिकित्सक की कड़ी परीक्षा होती है। उसमें सेवा-भाव तो बहुत ऊँचे दर्जे का होना ही

चाहिए। शम्भू जी ने इन गुणों का प्रशंसनीय परिचय दिया। बात-व्यवहार में उनकी मुस्कराहट और सेवा-मनोवृत्ति से आदमी प्रभावित होता है, और उनके प्रति प्रेम और श्रद्धा रखने लगता है। चिकित्सा-संस्थाओं में ऐसे ही कार्यकर्ता होने चाहिएँ।

प्राकृतिक चिकित्सा संबन्धी दृष्टिकोण—प्राकृतिक चिकित्सालय में आने पर शम्भू जी का विश्वास इस चिकित्सा पद्धति के सम्बन्ध में अधिकाधिक दृढ़ होता गया। नाड़ी परीक्षा आदि का महत्व जानते हुए और समय-समय पर उसका उपयोग करते हुए भी चिकित्सा सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण बदल गया है। उनका कथन है कि प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोगी की इच्छा का विचार करके उसके अनुकूल उपचार किया जाता है। बहुधा ऐसा होता है कि रोगी पानी मांग रहा है, और प्यास के मारे छटपटा रहा है, पर चिकित्सक उसे पानी एक दो घूँट बड़ी कंजूसी से देते हैं और अनेक बार तो बिल्कुल ही नहीं देते, वे रोगी को इलायची, मिस्री, आलूबुखारा आदि मुँह में रख कर संतोष करने को कहते हैं। पर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोगी को पानी के लिए तरसाया नहीं जाता, उसे यथेष्ट पानी पीने दिया जाता है। यदि रोगी को सर्दी लगती है तो गर्मी दी जाती है, और अगर उसे गर्मी मालूम होती है तो ठंडक का उपचार किया जाता है।

यह चिकित्सा पद्धति वास्तव में जीवन पद्धति है। यह हमें प्रकृति के संकेत समझने का आदेश करती है। यदि हम इसे दैनिक जीवन में अपना लें और इसके अनुसार अपना जीवन-क्रम बना लें और खान-पान ठीक रखें तो हमें बहुत सुख मिले। आवश्यकतानुसार उपवास करके हम अपने शरीर को स्वयं शुद्ध कर सकते हैं। प्रायः हम लोग सर्दी, गर्मी से बहुत डरते हैं; हवा या वर्षा से बहुत बचते हैं, अमृत-मयी धूप का उपयोग ही नहीं करना चाहते। आदमी थोड़ा अभ्यास करे तो वह इन चीजों को सहन करने लगे और इनके सेवन से, बिना कुछ खर्च किये ही बहुत लाभ उठाए।

विशेष वक्तव्य; हमें प्रकृति से सहयोग करना चाहिये—प्रकृति स्वयं हमारे शरीर को ठीक रखने की व्यवस्था करती है। जब तक हमारा उससे सहयोग होता है तब तक व्यवस्था ठीक चलती है। हमारे द्वारा गल्ती होने पर प्रकृति हमें चेतावनी देती है। उसकी उपेक्षा करने पर प्रकृति हमें प्रायश्चित करने का अवसर देकर हमें सच्चे रास्ते का अवलोकन कराती है। परन्तु जब हम उससे असहयोग करते हैं और उसके आदेशों के विपरीत व्यवहार करते हैं तो हमारे शरीर की व्यवस्था बिगड़ जाती है। उदाहरण के लिए जुकाम होने पर स्वभावतः हमारी भोजन में अरुचि हो जाती है। यदि हमने इस संकेत की अवहेलना की, और भोजन कर ही लिया तो सफाई करने वाली प्रकृति का कार्य-भार बढ़ जाता है। पहले उसे हमारे शरीर से नाक के द्वारा थोड़ा सा ही मल निकालना था, अब उसे बहुत अधिक मल निकालने का काम करना हो जायगा। इसमें उसे कई गुनी शक्ति खर्च करनी होगी, और सम्भव है वह नाक के अतिरिक्त दूसरे मार्गों से भी सफाई करने लगे, इसके लिए उसमें यथेष्ट क्षमता न हो। यदि वह असफल रही तो उसका दुष्परिणाम भयंकर रोग के रूप हमें भोगना पड़ेगा।

अस्तु हमें प्रकृति के कार्यों में सहयोगी होना चाहिए, न कि उसके मार्ग में रोड़ा बनना और बाधा उपस्थित करना। हम प्रकृति-दत्त पंच महाभूतों का समुचित सेवन करें और प्रकृति से दूर या पृथक् होने की भावना न रखें।

पूर्णमय के पूर्ण पुत्र हैं, कहां अपूर्णता है?
पंच तत्व हैं सेवक मेरे, मेरा राज्य अपार है॥

प्राकृतिक जीवन और खानपान आदि

कुदरती इलाज करने वालों को तो अपने रोगियों को तन्दुरुस्ती के नियमों का अभ्यास कराने में ज्यादा दिलचस्पी होती है ।

—गांधी जी

'भोजन ही औषधि है ।'

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषध निषेवणै ।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषध-निषेवणै ॥

[यदि जीवन यम-नियम पूर्वक बीत रहा हो तो औषधि की आवश्यकता नहीं । कुपथ्य होने पर औषधि का उपयोग नहीं ।]

प्राकृतिक जीवन, आदर्श और व्यवहार—वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति इतनी चिकित्सा पद्धति नहीं है, जितनी यह एक जीवन पद्धति है । मनुष्य किसी ऐसी जीवन विधि की खोज में रहता है जिसमें उसे अधिक से अधिक सुख मिले । वर्तमान अवस्था में मनुष्य जितना अधिक सभ्य है, उतना ही अधिक वह प्रकृति से दूर है । और दूर होता जा रहा है । कुछ विचारकों को यह अनुभूति हुई कि इसमें मनुष्य का कल्याण नहीं है, यदि वह कृत्रिम साधनों का उपयोग कम करके प्राकृतिक साधनों की ओर झुके तो वह कहीं अधिक स्वस्थ और सुखी हो । उन्होंने 'प्रकृति की ओर' का नारा लगाया है । ऐसे सब आदमियों को सभ्य मनुष्य निरा पागल कहने का तो साहस नहीं करता, तथापि वह उनको उपेक्षा करता है, या उन्हें उपहास का पात्र समझता है । वह प्रकृतिवादियों से कहता है, अच्छा तुम रोटी खाना छोड़कर कच्चा अन्न या फल आदि ही क्यों न खाया करो, तुम्हें

कपड़ा पहनने की जरूरत ही क्या है, मकान का झंझट क्यों रखते हो, आसमान की छत के नीचे ही जीवन क्यों नहीं व्यतीत करते ? हम स्वीकार करते हैं कि वर्तमान स्थिति में हम जिस अवस्था को पहुँच गये हैं उसमें प्राकृतिक जीवन के आदर्श की चरम सीमा को अपनाना सम्भव नहीं है। तथापि हमारा यह दावा तो है ही कि उस ओर दृष्टि रखकर अपने खान-पान और रहन-सहन आदि का निश्चय करें तो हमारा हित ही होगा। यदि हम कच्चे अन्न से निर्वाह नहीं कर सकते और फल आदि अब यथेष्ट उपलब्ध नहीं हैं तो हम अपने भोजन में बहुत सादगी लाकर उसके बहुत से विटामिन या पोषक तत्व नष्ट करने से बचा सकते हैं। यदि आज के सामाजिक जीवन में नंगे रहना ठीक नहीं है तो हम अनावश्यक वस्त्रों से अपने को मुक्त करके शरीर को हवा और धूप आदि से अधिक लाभ तो पहुँचा ही सकते हैं। इसी प्रकार हम अपने मकानों के निर्माण में भी खिड़कियों आदि के द्वारा पंच तत्वों का अधिक से अधिक उपयोग करने का विचार रख सकते हैं। इसी विचारधारा का कुछ खुलासा आगे किया जायगा।

स्वास्थ्य पर खानपान और रहन-सहन का प्रभाव—वास्तव में खान-पान और रहन-सहन का हमारे स्वास्थ्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। पर हम उसमें सादगी या स्वाभाविकता रखकर अपने आपको कंजूस या गंवार कहलाना पसन्द नहीं करते। सभ्यता और रईसी या शौकीनी का जीवन बिताने के लिए हमें उसका मूल्य अपने स्वास्थ्य की हानि के रूप में चुकाना पड़ता है। हमारा अपनी स्वाद-इन्द्रिय (जीभ) पर वश नहीं। हम अनेक प्रकार की चटपटी मसालेदार चीजें, पकवान और मिठाइयाँ आदि खाते हैं और तरह-तरह के पेय पीते हैं। फैशन या दिखाने के लिए हम बहुधा अनावश्यक कपड़े पहनते हैं। शरीर-श्रम में हमारी रुचि नहीं, जहाँ तक बन आवे हम आरामतलबी का जीवन बिताना चाहते हैं। ऐसी दशा में हमारा बार-बार बीमार पड़ना और वैद्य या डाक्टर की शरण लेना स्वाभाविक ही है।

सन् १९५१ में मैंने गांधीनगर (जयपुर) के प्राकृतिक चिकित्सालय में अपनी लड़की शान्ति को यहाँ इलाज के लिए बुलाया था, वह यहाँ लगभग तीन माह रही। सादा खान-पान, कुछ मामूली शारीरिक क्रियाएँ—चक्की चलाना, सूत कातना, घूमना-फिरना—इन बातों से उसे काफी लाभ हुआ। पर आजकल के शहरी जीवन में ये बातें निभती नहीं, और बहुतों को बिना मिर्च मसाले और छौंक के साग और मोटे आटे की रोटी ही नहीं भाती। शान्ति का छोटा भाई प्रमोद यहाँ आया था, पर इस 'सादगी' से वह जल्दी ही घबरा गया।

क्या खाना चाहिए ? ईश्वर की वाणी सुनो—मनुष्य को क्या खाना चाहिए—इसका उत्तर जानने के लिए ईश्वर की वाणी सुननी चाहिए। वह वाणी प्रकृति के संकेतों में प्रगट होती है। अस्तु, भोजन के सम्बन्ध में हमारे चार पथ-प्रदर्शक हैं। पहले आँख है, वह बताती है कि खाद्य पदार्थ का रूप कैसा है; वह ईश्वर का हाल का ही बनाया हुआ अर्थात् ताजा ही है, या बासी और सड़ा-गला। आँख के बाद दूसरा नम्बर नाक का है। वह बताता है कि उस पदार्थ में गंध ठीक प्रकार की है या नहीं; उसमें किसी प्रकार की बदबू तो नहीं है। तीसरा नम्बर जीभ का है। वह बताती है कि उसका स्वाद रुचिकर है या नहीं, वह कड़वा, कसैला, खारा, तीखा या बेस्वाद तो नहीं हैं। दांत हमें चेतावनी देते हैं कि खाने का कोई पदार्थ ऐसा मुलायम या पतला न बनाया जाय कि उसके खाने में दांतों का कुछ उपयोग ही न हो। यदि कोई पदार्थ अपने प्राकृतिक रूप में ही ऐसा हो जो आसानी से निगला जा सके उसे भी दांतों से कुचल कर या चबाकर तथा कुछ देर मुंह में रखकर खाना ही चाहिए।

कब खाना चाहिए—मनुष्य को भोजन कब करना चाहिए, यह प्रश्न अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है, तथापि जब कि प्रश्न उपस्थित किया जाता है तो इस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। सीधा जवाब तो यही है कि भूख लगने पर खाना चाहिए। पर हमारा जीवन-

व्यवहार ऐसा हो चला है कि किस समय हमारी भूख वास्तविक है, या असली इसका हमें बहुधा ध्यान नहीं रहता। कोई जायकेदार चीज देखी तो उसे खाने को मन हो जाता है। हमें एक प्रकार की भूख का आभास होने लगता है। पर यह वास्तविक भूख नहीं होती। जब असल में भूख होगी तो स्वाद या जायके का ऐसा महत्व नहीं रहेगा, साधारण पदार्थ भी अच्छा लगेगा। कहा है कि 'भूख में गूलर पकवान।' अनेक बार हम देखते हैं कि आदमी तरह-तरह के साग भाजी, चटनी, अचार, मुरब्बे आदि के साथ भोजन करता है, इनके बिना उसे खाना अच्छा ही नहीं लगता। यदि वास्तव में भूख है तो भोजन के साथ इन भांति-भांति के सहायकों की आवश्यकता न होगी, और आदमी को इनके बिना भी खाने में आनन्द मालूम होगा।

सात्विक भोजन किसे कहें ? कुछ विचारणीय बातें—प्रायः विद्वानों ने भोजन के तीन भेद किये हैं—सात्विक, राजसिक और तामसिक। चिकना, प्राकृतिक, ताजा, मीठा, स्वादिष्ट भोजन सात्विक कहा जाता है। बासी, ठंडा, सड़ा-गला, रूखा भोजन राजसी और कड़ुवा, कसैला, चरपरा, खारा, बदबूदार, नशा करने वाला भोजन तामसिक माना जाता है। प्रायः यह समझा जाता है कि बौद्धिक कार्य करने वालों को सात्विक भोजन ही खाना चाहिए, और शरीर-श्रम करने वालों को राजसी निर्वाह के लिए तामसी भी चल सकता है। वास्तव में समाज की सुव्यवस्था के लिए उसमें बुद्धिजीवियों और (शरीर) श्रम करने वालों का वर्ग होना अनुचित और अनिष्टकारी है; कोई आदमी केवल बुद्धि से काम लेने वाला नहीं होना चाहिए। शरीर-श्रम सभी को करना चाहिए।

साधारणतया इस विषय में बहुत मतभेद न होगा कि मनुष्य का भोजन सात्विक ही होना चाहिए। विशेष दशाओं में राजसी भोजन क्षम्य हो सकता है; तामसी भोजन का सेवन तो होना ही न चाहिए। परन्तु असल में किस भोजन को सात्विक कहना ठीक है, यह बहुत

विचारणीय है। अनेक लेखकों ने तरह-तरह की मिठाइयों, पकवान, खीर, मलाई, रवड़ी, हलवा, पूरी, पराठा, तले हुए साग-भाजी आदि की भी सात्विक भोजन में गणना की है। यह वात प्राकृतिक आहार से मेल नहीं खाती, और आवश्यकता इस वात की है कि भोजन यथा सम्भव प्राकृतिक होना चाहिए। उसमें मनुष्य छौंकने तलने आदि की क्रियाओं द्वारा वहुत परिवर्तन न करे। जिन चीजों को आदमी प्राकृतिक रूप में न खा सके, उनके भी जहाँ तक वने कोई तत्व नष्ट न किये जाँय और उन्हें पूरा ही खाया जाय। उदाहरण के लिए अन्न को पीस कर आटा वनाने में उसका चोकर या छानन न फेंकना चाहिए और दाल को छिलके सहित ही खाना चाहिए।

जो पदार्थ जल्दी विगड़ते हैं, वे हज्म जल्दी होते हैं—प्रकृति ने हमारे खाने के लिए अनेक पदार्थ वनाये हैं, और नित्य वनाती ही रहती है। कुछ पदार्थ तो उसी दिन खाने के होते हैं, अगले दिन विगड़ जाते हैं, कुछ एक सप्ताह तक, कुछ एक पखवारे या महीने तक, कुछ साल भर तक या इससे भी अधिक समय तक खाये जा सकते हैं। ध्यान में रखने की वात यह है कि जो चीज जितनी जल्दी खराव हो जाती है, वह चीज प्राय: उतनी ही जल्दी हज्म होती है। उदाहरण के लिए प्रकृति हमें हरा पत्तीदार साग हर रोज देती है, अगर वह एक दिन रखा रहे तो वासी हो जाता है, उसके ताजा होने में जो गुण होते हैं, वे नहीं रहते, कम हो जाते हैं। इसलिए यह साग जल्दी हज्म होता है। अव दूसरे साग सब्जी की वात लें। घीया, गोभी, तोरई, टमाटर, ककड़ी, भिंडी, परवल—ये चीजें एक दो दिन रखी रहने से इतनी नहीं विगड़तीं, जितना हरे पत्ते के साग विगड़ते हैं। ये पत्तीदार साग की अपेक्षा पाचन में अधिक समय लेते हैं। इनके वाद गाजर, मूली, शलजम आदि का नम्वर है। आलू, कचालू, रतालू, शकरकन्द, जमीकन्द आदि और भी ज्यादा समय तक अच्छी हालत में रहते हैं; ये अन्य सव सागों से ज्यादा देर में हज्म होते हैं।

फलों की भी यही बात है। सेब, संतरा, केला, अमरूद, रसभरी, नासपाती, मोसम्बी अनार, अंगूर आदि जो फल स्वयं (बिना किसी व्यवस्था के) जितने अधिक समय तक अच्छा रह सकता है, वह उतना ही देर में हज्म होता है। इसी प्रकार बादाम, गोला (खोपरा), किसमिस, काजू, चिलगोजा, पिंड खजूर, सूखे मेवे, अंजीर, खुरमानी, मुनक्का आदि जो अपेक्षाकृत अधिक समय तक ठहर सकती हैं, उनके पाचन में भी अधिक समय लगता है। अनाज जो साल भर या अधिक समय तक अच्छा रहता है, उसके पाचन में बहुत देर लगती है। यह मोटा नियम है।

खास कर बीमारी के दिनों में मनुष्य को पहले ऐसे पदार्थ खाने चाहिए जो सबसे जल्दी हज्म होने वाले हों जिसका पाचन सबसे सुगम हो। उसके बाद एक के बाद दूसरी क्रमशः ऐसी चीजें खानी चाहिए जो पाचन में उत्तरोत्तर अधिक समय लें। उपवास के बाद भी भोजन के इस क्रम का ध्यान रखना जरूरी है।

रोग कैसे भोजन से होता है ?—यह बात कुछ अजीब मालूम होने पर भी सत्य है कि मनुष्य के अधिकतर बीमारियों का कारण उनका भोजन ही होता है। जहाँ उचित भोजन शरीर का पोषण करता और मनुष्य को जीवित रखता है, अधिक या अनियमित भोजन शरीर को रोगी करता है, आदमी की जान ले लेता है। जर्मनी में अडाल्फ जुस्ट नाम का एक सुप्रसिद्ध चिकित्सक हुआ है। उनकी पुस्तक 'प्रकृति की ओर' विश्व-विख्यात है, इसके अंग्रेजी संस्करण का नाम 'रिटर्न टु नेचर' है। इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने भोजन सम्बन्धी बहुत ही महत्वपूर्ण बात थोड़े से शब्दों में कह दी है। यह हरेक मनुष्य के मनन करने और स्मरण रखने की है।

'रोग, मनुष्य के शरीर में अप्राकृतिक भोजन के प्रवेश से पैदा होता है, अर्थात् ऐसा भोजन करने से होता है, जिसे प्रकृति ने मनुष्य के लिए नहीं बनाया है, और न शरीर के पचाने वाले अवयव ही उसके

अनुकूल हैं। ऐसा (अप्राकृतिक) भोजन या तो बिल्कुल ही नहीं पचता या आधा-पर्धा पचता है। जिस अंश का पाचन नहीं होता, वह विजातीय द्रव्य के रूप में पड़ा रहता है, सड़ने लगता है और शरीर के अंग-प्रत्यंग में घुस जाता है, और मनुष्य के लिये सब रोगों, सब दुःखों और सब कष्टों का कारण बन जाता है।

रोग निवारण की अचूक विधि—रोगों को कैसे हटाया जाय, इसके लिए अनेक शास्त्रियों और वैज्ञानिकों ने अपने अपने ज्ञान और अनुभव के अनुसार विस्तार-पूर्वक लिखा है, और संसार की सभी प्रमुख भाषाओं में इस विषय का विशाल साहित्य है। छोटी से छोटी और साधारण मालूम होने वाली बातों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। उसके विस्तार में न जाकर हम पाठकों को पूर्वोक्त डाक्टर जूस्ट की पुस्तक की कुछ महत्वपूर्ण पंक्तियाँ भेंट करते हैं, ये बहुत ही सार गर्भित हैं, इनमें मानों सागर में गागर भरा है—

'हर हालत में शुद्ध ताजी हवा की प्राप्ति पर ध्यान दीजिए। गीली मिट्टी की पट्टी का प्रयोग कीजिए, वायु और प्रकाश का तथा पानी का स्नान लीजिए। शरीर की मालिश कराइए। जब तक भूख बहुत जोर की न लगे, भोजन करना बन्द कर दीजिए। और रोग-मुक्त होने पर, जहाँ तक सम्भव हो, भोजन को ताजे फलों तक सीमित रखिये। अधिकतर खुली हवा में रहिए। नंगे पाँव, और नंगे सिर चलिये और जितना भी बन आवे धरती की शक्ति का उपयोग कीजिए।

उपवास की उपयोगिता—ऊपर कहा गया है कि बीमार होने पर भोजन करना बन्द कर देना चाहिए अर्थात् उपवास करना चाहिए। उपवासों का महत्व सभी धर्मों में बताया गया है। और सभी धर्मों के कितने ही आदमी समय-समय पर उपवास करते भी रहते हैं। परन्तु अधिकतर दशाओं में उपवास को एक धार्मिक प्रथा के रूप में किया जाता है। इसके स्वास्थ्य सम्बन्धी दृष्टिकोण पर ध्यान नहीं दिया जाता। इसलिए इससे शरीर को उतना लाभ नहीं होता, जितना होना

चाहिए। उपवास का उपयोग यह है कि शरीर की पाचन शक्ति को उपवास काल में आराम मिल जाय; जो पहले का पाचन कार्य शेष रहा हो; उसे निपटा लिया जाय, और नया काम न बढ़े। यह क्रिया ठीक होने से शरीर निर्विकार होकर आगे कार्य करने के लिए अधिक क्षमतावान बन जाता है।

आजकल युवकों में, खासकर शिक्षित वर्ग में उपवास की ओर रुचि बहुत कम पायी जाती है। लोगों की यह धारणा है कि उपवास करने से कमजोरी बढ़ जायगी। समय-समय पर उपवास करते रहने वाले व्यक्ति को अस्थायी रूप से कमजोरी हो भी, तो पीछे जल्दी ही उसकी पूर्ति हो जाती है; यही नहीं उपवास से शरीर की सफाई हो जाने से आगे के लिए उसके विकास और बलवृद्धि का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसके विपरीत, उपवास न करने की दशा में शरीर के अन्दर कुछ अनावश्यक पदार्थ संचित रहता है, जो आगे पीछे उसे अस्वस्थ और रोगी कर देगा जिसमें कमजोरी बहुत अधिक होना स्वाभाविक ही है। इसलिए उपवास से घबराने की आवश्यकता नहीं। हरेक व्यक्ति आठवें या पन्द्रवें दिन एक दिन (दोनों का समय) उपवास करना चाहिए।

उपवास के समय ध्यान में रखने की बातें—उपवास की उपयोगिता ऊपर बताया जा चुकी है। उससे आदमी को पूरा लाभ मिले, इसके लिए खासकर दो बातें आवश्यक हैं, एक तो यह कि उपवास काल में पानी पीना बन्द या कम नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से शरीर की सफाई का काम यथेष्ट नहीं हो पाता। इसलिए उपवास के समय पानी काफी पीते रहना चाहिए। यदि पानी में नींबू का रस मिला लिया जाय तो और अच्छा है।

दूसरी ध्यान देने की बात यह है कि उपवास के बाद भोजन कैसा किया जाय। इसके विषय में पहले लिखा जा चुका है। जिस भोजन का पाचन सहज और जल्दी ही हो, वैसा ही भोजन—शाकाहार या

वैसा ही खाना चाहिए। सलाद (कच्चे साग और धनिये पुदीने के टुकड़े) में पोषक तत्व बहुत होते हैं।

रोटी की अपेक्षा साग दुगने और हो सके तो इससे भी अधिक परिमाण में खाया जाना चाहिए। साग में क्षार-पदार्थ यथेष्ट होने से इनके खाने से रक्त-शुद्धि होती रहती है, और मनुष्य का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

पत्तीदार सागों के अतिरिक्त अन्य सब्जी—लौकी या घीया, तोरई, कद्दू, टमाटर, भिंडी, गाजर, मूली, ककड़ी, शलगम, परवल आदि भी बहुत उपयोगी हैं। किसी तरकारी का छिलका उतार फेंकना ठीक नहीं, उसमें बहुत गुणकारी तत्व होते हैं। गाजर या शकरकन्द आदि को उबालने की अपेक्षा (हल्की आंच) में सेंक कर खाना अच्छा है। यदि उबाला जाय तो उसका पानी न फेंका जाय। गाजर के अन्दर की लकड़ी भी खाने की चीज है, फेंकने की नहीं।

घी-तेल और गुड़—खासकर गाय का घी बहुत उपयोगी है। पर वह आवश्यकता से अधिक, या पकवान और मिठाई के रूप में खाना अच्छा नहीं। आजकल तो शुद्ध घी मिलता ही बहुत कम है इसलिए उसकी जगह सरसों, मूँगफली, तिल, या नारियल आदि के तेलों का उपयोग करना चाहिए, पर यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि तेल शुद्ध और ताजे हों, इसलिए जब, जितनी जरूरत हो, तेलियों की घानी में निकलवाने चाहिये। मिलों में तेल बहुत बड़ी मात्रा में पेरा जाता है, वह बहुत दिन तक बिकने के लिए होता है, और अधिक समय तक पड़ा रहने से खराब न हो जाए, इस आशंका से उसमें कुछ रासायनिक द्रव मिला दिये जाते हैं। यह तेल देखने में साफ होता है, पर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक रहता है। घानी के तेल के मुकाबले में इसमें पोषक तत्व कम होते हैं, और यह पचता भी कम है, या देर में पचता है इसलिए यथा-सम्भव इसका इस्तेमाल नहीं होना चाहिए। जमाये हुए तेल तो बहुत ही हानिकारक हैं। उन्हें वेजिटेबिल-घी कहना और घी के नाम से बेचना जनता को धोखा देना है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से चीनी की अपेक्षा गुड़ बहुत गुणकारी है। गुड़ बनाने में रस का केवल पानी ही उड़ाया जाता है, शेष सब पोषक तत्व उसमें बने रहते हैं। परन्तु चीनी बनाने में सफेद मीठे को छोड़कर शेष सब खनिज नमक और कुदरती तत्व नष्ट हो जाते हैं। चीनी देखने में सफेद सुन्दर जरूर मालूम होती है, पर पूरा पोषण पाने के लिए गुड़ का ही सेवन किया जाना चाहिए। चीनी तो बहुत हानि-कारक है; गांधी जी ने इसे 'सफेद जहर' कहा है।

कपड़े की बात—हम लोग कपड़ा पहनने में मुख्य विचार इस बात का नहीं करते कि कहाँ तक हमारे स्वास्थ्य के लिये हितकर या शरीर के वास्ते जरूरी है। हमें चिन्ता इस बात की रहती है कि हमारा कपड़ा देखकर कोई हमें गरीब न समझे, हमारी पोशाक बढ़िया मालूम हो और समाज में हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली हो। इसका परिणाम यह होता है कि अक्सर हम अनावश्यक कपड़ा पहनते हैं। जिस समय हम बिना कपड़े के रह सकते हैं, उस समय भी शरीर को कपड़े से ढका रखते हैं, बदन को हवा और रोशनी (धूप) लगने नहीं देते, उसे बीमार डालने में मदद पहुँचाते रहते हैं। एक ओर हम अपना पैसा अधिक खर्च करते हैं दूसरी ओर स्वयं अपने स्वास्थ्य पर आघात पहुँचाते हैं।

मिल के महीन या गफ कपड़े की अपेक्षा, स्वास्थ्य की दृष्टि से हाथ से कते सूत की और हाथ से बुनी हुई खादी अधिक उपयोगी है। खादी भी बहुत महीन या गफ होना ठीक नहीं है।

रहन-सहन-हवा और धूप—स्वास्थ्य की दृष्टि से भोजन और वस्त्र के अतिरिक्त रहन-सहन का भी बड़ा महत्व है। हमें शुद्ध हवा में रहना चाहिए। आजकल शहरों में घनी बस्ती के कारण और गांवों में सफाई आदि की व्यवस्था न होने से हवा प्रायः गन्दी रहती है, फिर हम अधिकतर मकान के अन्दर रहते हैं, खुली जगहों में बहुत कम बैठते उठते हैं। इससे हवा का यथेष्ट उपयोग नहीं कर पाते। धूप में रोगों का विनाश करने की अद्भुत शक्ति है, खास कर प्रातःकाल की धूप में

अमृत स्वरूप है। पर हमें उघाड़े बदन अर्थात् बिना कपड़े पहने बैठने का अभ्यास ही नहीं होता। इससे हम उससे वंचित रहते हैं। स्वास्थ्य चाहने वालों को ऐसा रहन-सहन रखना चाहिए कि हवा और धूप का यथेष्ट सेवन करते रहें।

मिट्टी का उपयोग—मनुष्य पृथ्वी-पुत्र है, धरती अर्थात् जमीन को माता कहा गया है। पर सभ्य मनुष्य इस माता की गोद से दूर ही रहता है; जैसे कोई आधुनिक युवक शहर में शिक्षा पाकर अपनी गाँव में रहने वाली माता से कुछ खिंचा-खिंचा सा रहता है। पृथ्वी के संपर्क से मनुष्य को कितनी शक्ति और तेज स्फूर्ति मिल सकती है, यह हम प्रायः जानते ही नहीं। नंगे पाँव चलना अब गँवारूपन माना जाता है, हम घूमने के समय हर दम जूता पहने रहते हैं, और अनेक दशाओं में जूते अन्दर जराब भी होती है। निदान, हम अपने पाँवों को मिट्टी का स्पर्श करने देना नहीं चाहते। घरों में जहाँ तक बन आता है, फर्श पक्की सिमेंट या पत्थर की होती है और उस पर भी दरी आदि बिछी होती है। फिर शरीर में मिट्टी का लेप करके स्नान करने या मिट्टी से सिर धोने आदि की तो बात ही कहाँ। आवश्यकता है कि हम यह समझें कि मिट्टी की अवहेलना करने से हमने कितना खोया। इससे सम्पर्क बढ़ाने में ही मनुष्य का कल्याण है। रोग-निवारण अर्थात् चिकित्सा में मिट्टी का कितना उपयोग है, इसके विषय में अन्यत्र लिखा जा चुका है।

मकान और आसमान—मिट्टी की उपयोगिता को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट है कि पक्के और ऊँचे मकानों में रहने की अपेक्षा कच्चे अर्थात् मिट्टी के मकानों में रहना अधिक लाभकारी है। यदि मकान पक्का ही हो तो कम से कम चौक तो मिट्टी या बालू का रहे। मकान की बनावट ऐसी होनी चाहिए कि हवा रोशनी और धूप अच्छी तरह मिल सके, इस दृष्टि से खिड़कियाँ आदि काफी होनी चाहिएँ। सोने की जगह (वर्षा के समय को छोड़ कर) आसमान के नीचे होनी चाहिए

अर्थात् सोना खुले स्थान में होना चाहिए, जहाँ कि आसमान के तारे चन्द्रमा आदि का दर्शन होता रहे और उनका आकर्षण मिलता रहे।

विशेष वक्तव्य—प्राकृतिक जीवन का विषय बहुत विशाल है, यहाँ तो केवल इस बात की थोड़ी सी झाँकी देने का प्रयत्न किया गया है कि हम अपनी वर्तमान अवस्था में अपने खान-पान और रहन-सहन आदि में उसका कहाँ तक विचार रख सकते हैं, और उसे अमल में ला सकते हैं। हमें आशा है कि यह रास्ता मानव को सुख शान्ति प्रदान करेगा। अतः हम चाहते हैं कि इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें, और जहाँ तक भी हम इसे अपना सकें, अपना कर लाभ उठावें।

प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा और साहित्य

उस मनुष्य ने सच्ची शिक्षा हासिल की है, जिसका मन प्राकृतिक नियमों से पूर्ण है और जिसकी इन्द्रियाँ उसके वश में हैं।......प्रकृति उसका सुन्दर उपयोग करेगी और वह प्रकृति का सुन्दर उपयोग करेगा।

—गांधी जी

प्राकृतिक चिकित्सा की विद्या गाँव-गाँव में पढ़ायी जानी चाहिए। अगर यह सिखाया जायगा तो आप देखेंगे कि कम-से-कम खर्च में लोगों की अच्छी से अच्छी सेहत बन जायगी; क्योंकि कुदरत में ऐसी शक्ति है कि वह शरीर को सुधारने के साथ-साथ कोई दूसरा विगाड़ उसमें पैदा नहीं करती। औषधियों से यह होता है कि एक रोग दूर हुआ, ऐसा आभास जहाँ होता है, वहाँ फौरन दूसरा रोग हो जाता है। इस तरह रोगों का सिलसिला लगा रहता है।

—विनोवा

(१) शिक्षा

आजकल शिक्षा में भूगोल, अङ्कगणित, रेखागणित, बीजगणित, इतिहास आदि अनेक विषय सिखाये जाते हैं। विद्यार्थी उन्हें कंठ करने या सीखने में दिन रात मगजपच्ची करते हैं, और उनकी परीक्षा देने की फिक्र में अपना स्वास्थ्य खो वैठते हैं और जीवन की की परीक्षा में अपनी असफलता की घोषणा करते हैं। कैसी चिन्तनीय स्थिति है!

शिक्षा का अनिवार्य गुण : स्वास्थय और चिकित्सा।—शिक्षा कैसी हो, यह एक गहन विषय है। इसकी गहराई की वातें छोड़कर

हम यहाँ यह कहना चाहते हैं कि हमारी शिक्षा में यह गुण तो होना ही चाहिए कि उसके सहारे हम स्वयं स्वस्थ रहें और दूसरों को स्वस्थ रहने का मार्ग बता सकें। यदि हम अपने ही स्वास्थ्य की रक्षा नहीं करते और बारबार बीमार पड़कर स्वयं कष्ट उठाने के अतिरिक्त दूसरों की चिन्ता कष्ट और कार्यभार बढ़ाते हैं तो हमारी शिक्षा और विद्वत्ता, हमारा ऊँची ऊँची परीक्षाएँ पास करना और उपाधियाँ और प्रमाण पत्र प्राप्त करना किस काम का। इसलिए शिक्षा में स्वास्थ्य और चिकित्सा के विषय को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए।

वर्तमान व्यवस्था अहितकर है—वर्तमान शिक्षा-पद्धति में सुधार करने के प्रसङ्ग में यह बात सर्वथा स्वीकार की जाती है और आधुनिक या नये ढङ्ग के पाठ्य क्रम में स्वास्थ्य का भी विषय निर्धारित किया जाता है, तथा कुछ खास खास स्थानों में आयुर्वेद विद्यालय या महा-विद्यालय तथा मेडिकल स्कूल और कालिज आदि संस्थाएँ भी चल रही हैं। इन पर देश का करोड़ों रुपये खर्च किया जाता है, और सुधार के नाम इन संस्थाओं पर होने वाला खर्च उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। पर उससे राष्ट्र का कुछ हित नहीं होता, और सार बात तो यह है कि औषधियों को प्रोत्साहन देकर ये जाने-अनजाने बहुत अहित ही कर रही हैं।

नये दृष्टिकोण की आवश्यकता—हमें अपना वर्तमान दृष्टि-कोण बिल्कुल बदल देना चाहिए। यदि हम ऐसे नियम सीखते हैं, जिनका हम अपनी वर्तमान स्थिति में उपयोग नहीं कर सकते, अथवा यदि हमें यही ज्ञान है कि बीमार पड़ने पर औषधियों और अस्पतालों की शरण लेनी होगी तथा वैद्यों और डाक्टरों का आश्रित होना पड़ेगा तो ऐसे परावलम्बन से हमारा काम कैसे चलेगा ? हमें तो प्राकृतिक जीवन और प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान मिलना चाहिए।

गाँव-गाँव में प्राकृतिक जीवन और प्राकृतिक चिकित्सा की संस्थाएँ हों—इस तरह की शिक्षा संस्थाएँ कुछ खास-खास बड़े गाँवों

में अथवा कस्बों तक में होना ही काफी नहीं है। हमारे देश की तो अधिकांश जनता गाँवों में रहती है, और गाँवों में रहने वाले आदमी और औरतें भी हमारे भाई बहिन हैं। ग्रामवासी बालक-बालिकाएँ भी हमारी ही सन्तान हैं। इस बात को भली-भाँति दिल में बैठाकर ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि प्रत्येक गाँव के निवासी यह सीख सकें कि अपनी पहुँच के तथा स्थानीय साधनों से ही वे किस प्रकार स्वस्थ रह सकते हैं, और यदि कभी संयोग से बीमार पड़ जायँ तो उसकी चिकित्सा वहाँ ही, और वे स्वयं ही कैसे कर सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक बड़े गाँव तथा छोटे-छोटे गाँव के समूह में प्राकृतिक जीवन और प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा देने वाली संस्थाएँ होनी आवश्यक हैं। वैसे भी प्राकृतिक चिकित्सालयों के लिए ग्रामीण वातावरण ही अधिक उपयुक्त होता है।

(२) साहित्य

प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य की कमी—इस विषय के साहित्य की कितनी उपयोगिता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। खेद है कि हमारे यहाँ इसकी बहुत ही कमी है। हिन्दी के बड़े-बड़े पुस्तकलयों तथा संग्रहालयों में स्वास्थ्य और चिकित्सा की चाहे जितनी पुस्तकों के दर्शन हों पर प्राकृतिक चिकित्सा की दो चार पुस्तकें मिलना कठिन हैं। हमारे स्कूलों और कालिजों की तो इस दृष्टि में और भी खराब दशा है। पुस्तकालयों के अध्यक्षों और शिक्षकों को प्रायः पता भी नहीं है कि इस विषय की भी पुस्तकें कुछ उपयोगी होती हैं। यदि किसी सज्जन से बातचीत हो तो वह कहेगा कि अभी ऐसी पुस्तकें हैं ही कहाँ।

वर्तमान पुस्तकें—हम इस स्थिति में नहीं कि इस विषय के सभी उल्लेखनीय साहित्य का परिचय दे सकें। अन्य भाषाओं की तो बात ही क्या, हिन्दी की सब पुस्तकें या उनकी अच्छी सूची हमारे सामने नहीं है। थोड़ी सी ही पुस्तकों का ज्ञान है।

पाठकों की जानकारी के लिए उनके नाम पते मूल्य आदि का उल्लेख नीचे किया जाता है। जिज्ञासु पाठक इनके प्रकाशकों तथा अन्य बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं से पत्र-व्यवहार करके इस सूची की कमी पूरी कर सकते हैं।

आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

१—आरोग्य की कुञ्जी ||)
२—प्राकृतिक जीवन की ओर ३||)
३—जीने की कला १||)
४—दुग्धकल्प |)
५—उपवास से लाभ १||)
६—आदर्श आहार १)
७—सर्दी जुकाम खाँसी |||)

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

८—रोगों की अचूक चिकित्सा ५)

प्राकृतिक चिकत्सालय, ११४-२ बी-सी, हाजरा रोड, काली-घाट, कलकत्ता

९—अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा ४)
१०—दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा ३)
११—पुराने रोगों की गृह चिकित्सा ४)
१२—स्त्री रोगों की गृह चिकित्सा २||)

नेचर क्योर पब्लिशिंग हाउस, पदुकोटा

१३—स्वाधीन स्वास्थ्य महाविद्या ५)

हिन्दी पुस्तक एजेंसी, बनारस

१४—आकृति निदान ३)

पुस्तक भण्डार, जयपुर

१५—सूर्य चिकित्सा |=)

प्राकृतिक चिकित्सालय, मगरवारा (उन्नाव)

१६—नवीन प्राकृतिक चिकित्सा २॥।≡)
१७—बापू जी और प्राकृतिक चिकित्सा ।)
१८—देवफल आम =)

कल्पवृक्ष कार्यालय' उज्जैन

१९—प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन (पौरुष और कायाकल्प) २)
२०—प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान १॥)
२१—प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान ।=)
२२—प्राण चिकित्सा २)
२३—दुग्ध चिकित्सा ॥।)
२४—सूर्य किरण चिकित्सा ५)
२५—अलौकिक चिकित्सा विज्ञान २)

भीष्म एण्ड ब्रादर्स, पटकापुर कानपुर

२६—दवाओं से बचो १)

प्राकृतिक चिकित्सा सङ्घ, गोरखपुर

२७—मैं तन्दुरुस्त हूँ या बीमार ॥)

प्राकृतिक जीवन कार्यालय, लखनऊ

२८—हमारा भोजन ३॥।)

प्राकृतिक आरोग्याश्रम, बनारस

२९—प्राकृतिक चिकित्सक ७॥)

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, ३९१ अपर चीतपुर रोड कलकत्ता

३०—घरेलू प्राकृतिक चिकित्सा -)
निरोग रहने के प्राकृतिक उपाय ।)

प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र, जसीडीह (बिहार)

३२—नवीन चिकित्सा विज्ञान ५)
३३—बच्चों की रक्षा ।=)

३४—अचूक चिकित्सा के प्रयोग २॥)
३५—आदर्श भोजन १)
३६—प्राकृतिक चिकित्सा ॥)
३७—स्वस्थ कैसे रहें ? २)

प्राकृतिक जीवन कार्यालय, डालीगंज लखनऊ

३८—हमारा भोजन ३॥)
३९—प्राकृतिक चिकित्सा ३)
४० —रंगीन रश्मि चिकित्सा ॥-)
४१—उपवास विज्ञान ॥)
४२—प्राकृतिक चिकित्सा का चमत्कार ॥)
४३—नवीन प्राकृतिक चिकित्सा २॥=)

श्री युगलकिशोर चौधरी (नीम का थाना, जयपुर) ने भी कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ—प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं में मेरी जानकारी में निम्नलिखित दो हैं। दोनों मासिक हैं।

(१) आरोग्य। यह आरोग्य कार्यालय, गोरखपुर से पिछले आठ वर्ष से प्रकाशित हो रहा है। वार्षिक मूल्य ५)

(२) प्राकृतिक जीवन। यह प्राकृतिक जीवन कार्यालय, लखनऊ से सात वर्ष से निकल रहा है। वार्षिक मूल्य ४)

उज्जैन से प्रकाशित होने वाला 'कल्पवृक्ष' (मासिक) आध्यात्मिक पत्र है, मानसोपचार इसका खास विषय है। इसमें आयुर्वेदिक चिकित्सा के साथ प्राकृतिक के भी लेख आते हैं। इसका वार्षिक मूल्य २॥) है।

अ० भा० सर्व सेवा संघ, वर्धा से प्रकाशित होने वाले 'सर्वोदय' मासिक और नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद, से प्रकाशित होने वाले 'हरिजन सेवक' के साप्ताहिक में जब भी चिकित्सा सम्बन्धी लेख

आते हैं तो अनिवार्य रूप से प्राकृतिक चिकित्सा का समर्थन करने वाले ही होते हैं।

विशेष वक्तव्य—प्राकृतिक चिकित्सा करने वालों को चाहिए कि साधारण मौसमी बीमारियों के इलाज की सरल विधियां जनता तक पहुँचावें। 'बायोकमी' पद्धति वालों के पास बारह दवाइयों का एक बक्स एक पुस्तक रहता है। उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र और बंगाल के बहुत से परिवारों में यह प्रचलित है। प्राकृतिक चिकित्सा में तो दवाइयों का पेटी भी आवश्यक नहीं। उसके लिए तो केवल एक ऐसी पुस्तक चाहिए, जिसमें प्राकृतिक की बुनियादी बातें और आहार-विधि का सरल सुबोध वर्णन रहे। लोकहितैषी सज्जनों को ऐसे प्रकाशनों के प्रचार में उदारता-पूर्वक सहयोग प्रदान करना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा के ग्यारह सूत्र

१—हमें प्रकृति माता से यथेष्ट सम्पर्क रखना चाहिए। सुविधानुसार नदी, पहाड़, वन-उपवन का और वर्षा ऋतु में रंग-बिरंगे बादलों का दृश्य देखना चाहिए। नंगे पाँव चल कर, साफ मिट्टी में बैठ कर या उसमें सोकर पृथ्वी से शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। चिकनी मिट्टी मल कर स्नान करना और सिर धोना बहुत लाभकारी है।

२—शुद्ध, ताजा जल सबसे बढ़िया पेय है; यह काफी मात्रा में पिया जाना चाहिए। चाय, कहवा, सोडा, लेमनेड आदि पेय हानिकारक हैं।

प्रतिदिन ताजे पानी से खुली हवा में स्नान करना बहुत लाभकारी है, इससे शरीर में ताजगी आती है।

३—शुद्ध हवा का सेवन जितना भी किया जा सके करना चाहिए। प्रातःकाल की ताजी हवा बहुत स्वास्थ्य-वर्धक है। सर्दी के मौसम में भी ठंडी हवा से डरना न चाहिए। सोते समय मुँह ढकना बहुत हानिकारक है। यदि कमरे में सोना हो तो खिड़कियाँ खुली रखनी जरूरी हैं।

४—सूर्य की खास कर प्रातःकाल की किरणें रक्त शोधक, रोग विनाशक और शक्ति-वर्धक होती हैं। उस समय जितनी भी देर सहन हो सके, उघाड़े अर्थात् नंगे बदन धूप-सेवन बहुत उपयोगी है।

५—आकाश-दर्शन से ज्योति बढ़ती है और मस्तिष्क शीतल होता है। रात्रि में खुले आकाश के नीचे रह कर चन्द्रमा और तारों का आनन्द लेना चाहिए।

हमारे बैठने और सोने आदि के कमरे में अधिक से अधिक स्थान खाली रहे, उसमें सामान न भरा रहे।

६—भोजन शरीर के लिए है, शरीर भोजन के लिए नहीं। भोजन खूब भूख लगने पर, और अच्छी तरह चबा कर खाया जाय। आग के सम्पर्क में आये हुए भोजन का उपयोग कम किया जाय। तले हुए, छौंके हुए पदार्थ न खाये जाँय। पूरी, कचौरी, पराठा, पकवान और मिठाइयाँ न खानी चाहिए। मौसमी फलों का सेवन हितकारी है।

आटा हाथ-चक्की का मोटा ही होना चाहिए, उसका चोकर (छानस) न निकाला जाय। दाल का छिलका न हटाया जाय, और चावल का माँड़ न निकाला जाय। हरी पत्तियों के साग—बथुआ, पालक, चौलाई, मेथी आदि दोनों समय काफी मात्रा में खाया जाय। यह साग इतने ही पानी में पकाया जाय कि पीछे बाकी न रहे, और अगर कुछ पानी रह जाय तो उसे पी लिया जाय।

७—रहन-सहन में सादगी हो। कपड़ा हाथ के कते सूत का और हाथ से बुना हो, बहुत गफ़, चिकना या गहरे रंग का चटकीला-भड़कीला न हो। कपड़ा स्वास्थ्य रक्षा के लिए हो, दिखाने या प्रदर्शन के लिए नहीं। शरीर का प्रकाश और हवा से यथेष्ट सम्पर्क होने में कपड़ा कुछ बाधक न हो।

८—शरीर से प्रतिदिन यथेष्ट श्रम होना आवश्यक है; श्रम उत्पादक हो, इसी में बुद्धिमानी है।

९—प्रति सप्ताह एक दिन उपवास करके शरीर के पाचन-अवयवों को विश्राम देना बहुत उपयोगी है। उपवास से पहले भी भोजन हलका होना चाहिए। बाद में तो फलाहार ही ठीक है। पेड़ा, बर्फी, कुट्टू या सिंघाड़े आदि के आटे का हलवा, पकौड़ी, या पूरी को 'फलाहार' नहीं समझना चाहिए। उपवास के समय आवश्यकतानुसार पानी पीते रहना चाहिए।

१०—अच्छे स्वास्थ्य के लिए अच्छे विचार होने आवश्यक हैं। इसलिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, उद्वेग या चंचलता

प्राकृतिक चिकित्सा के ग्यारह सूत्र

१—हमें प्रकृति माता से यथेष्ट सम्पर्क रखना चाहिए। सुविधानुसार नदी, पहाड़, वन-उपवन का और वर्षा ऋतु में रंग-बिरंगे बादलों का दृश्य देखना चाहिए। नंगे पाँव चल कर, साफ मिट्टी में बैठ कर या उसमें सोकर पृथ्वी से शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। चिकनी मिट्टी मल कर स्नान करना और सिर धोना बहुत लाभकारी है।

२—शुद्ध, ताजा जल सबसे बढ़िया पेय है; यह काफी मात्रा में पिया जाना चाहिए। चाय, कहवा, सोडा, लेमनेड आदि पेय हानिकारक है।

प्रतिदिन ताजे पानी से खुली हवा में स्नान करना बहुत लाभकारी है, इससे शरीर में ताजगी आती है।

३—शुद्ध हवा का सेवन जितना भी किया जा सके करना चाहिए। प्रातःकाल की ताजी हवा बहुत स्वास्थ्य-वर्धक है। सर्दी के मौसम में भी ठंडी हवा से डरना न चाहिए। सोते समय मुंह ढकना बहुत हानिकारक है। यदि कमरे में सोना हो तो खिड़कियाँ खुली रहनी जरूरी हैं।

४—सूर्य की खास कर प्रातःकाल की किरणें रक्त शोधक, रोग विनाशक और शक्ति-वर्धक होती हैं। उस समय जितनी भी देर सहन हो सके, उघाड़े अर्थात् नंगे बदन धूप-सेवन बहुत उपयोगी है।

५—आकाश-दर्शन से ज्योति बढ़ती है और मस्तिष्क शीतल होता है। रात्रि में खुले आकाश के नीचे रह कर चन्द्रमा और तारों का आनन्द लेना चाहिए।

हमारे बैठने और सोने आदि के कमरे में अधिक से अधिक स्थान खाली रहे, उसमें सामान न भरा रहे।

६—भोजन शरीर के लिए है, शरीर भोजन के लिए नहीं। भोजन खूब भूख लगने पर, और अच्छी तरह चबा कर खाया जाय। आग के सम्पर्क में आये हुए भोजन का उपयोग कम किया जाय। तले हुए, छौंके हुए पदार्थ न खाये जाँय। पूरी, कचौरी, पराठा, पकवान और मिठाइयाँ न खानी चाहिए। मौसमी फलों का सेवन हितकारी है।

आटा हाथ-चक्की का मोटा ही होना चाहिए, उसका चोकर (छानस) न निकाला जाय। दाल का छिलका न हटाया जाय, और चावल का माँड़ न निकाला जाय। हरी पत्तियों के साग—बथुआ, पालक, चौलाई, मेथी आदि दोनों समय काफी मात्रा में खाया जाय। यह साग इतने ही पानी में पकाया जाय कि पीछे बाकी न रहे, और अगर कुछ पानी रह जाय तो उसे पी लिया जाय।

७—रहन-सहन में सादगी हो। कपड़ा हाथ के कते सूत का और हाथ से बुना हो, बहुत गफ़, चिकना या गहरे रंग का चटकीला-भड़कीला न हो। कपड़ा स्वास्थ्य रक्षा के लिए हो, दिखाने या प्रदर्शन के लिए नहीं। शरीर का प्रकाश और हवा से यथेष्ट सम्पर्क होने में कपड़ा कुछ बाधक न हो।

८—शरीर से प्रतिदिन यथेष्ट श्रम होना आवश्यक है; श्रम उत्पादक हो, इसी में बुद्धिमानी है।

९—प्रति सप्ताह एक दिन उपवास करके शरीर के पाचन-अवयवों को विश्राम देना बहुत उपयोगी है। उपवास से पहले भी भोजन हलका होना चाहिए। बाद में तो फलाहार ही ठीक है। पेड़ा, बर्फी, कुट्टू या सिंघाड़े आदि के आटे का हलवा, पकौड़ी, या पूरी को 'फलाहार' नहीं समझना चाहिए। उपवास के समय आवश्यकतानुसार पानी पीते रहना चाहिए।

१०—अच्छे स्वास्थ्य के लिए अच्छे विचार होने आवश्यक हैं। इसलिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, उद्वेग या चंचलता

की बातों से बचना चाहिए। सात्विक और शान्तिदायक साहित्य का अवलोकन और मनन करना और ऐसे ही प्रवचन और कथाएँ सुनना हितकर है। जीवन का कुछ लक्ष्य रखना चाहिए—और वह लक्ष्य अच्छा ऊँचा हो। लोकसेवा में आनन्द का अनुभव किया जाना चाहिए।

११—कभी कोई बीमारी आ जाय तो उसे प्रकृति की ओर से सफाई की क्रिया मान कर दवाइयों द्वारा उसे रोकने का प्रयत्न न करना चाहिए। ऐसे अवसर पर पेशेवर डाक्टरों या हकीमों के चक्कर में न पड़ कर सर्व प्रथम भोजन बन्द कर देना चाहिए। पीछे किसी प्राकृतिक चिकित्सक की सलाह से ऐसा उपचार किया जाना चाहिए ... ग-सूचक हो, न कि उसके कार्य में विघ्न बाधा

मुद्रक—आर्ट प्रिन्टर्स, इलाहाबाद—३

की बातों से बचना चाहिए। सात्विक और शान्तिदायक साहित्य का अवलोकन और मनन करना और ऐसे ही प्रवचन और कथाएँ सुनना हितकर है। जीवन का कुछ लक्ष्य रखना चाहिए—और वह लक्ष्य अच्छा ऊँचा हो। लोकसेवा में आनन्द का अनुभव किया जाना चाहिए।

११—कभी कोई बीमारी आ जाय तो उसे प्रकृति की ओर से सफाई की क्रिया मान कर दवाइयों द्वारा उसे रोकने का प्रयत्न न करना चाहिए। ऐसे अवसर पर पेशेवर डाक्टरों या हकीमों के चक्कर में न पड़ कर सर्व प्रथम भोजन बन्द कर देना चाहिए। पीछे किसी प्राकृतिक चिकित्सक की सलाह से ऐसा उपचार किया जाना चाहिए जो प्रकृति से सहयोग-सूचक हो, न कि उसके कार्य में विघ्न बाधा उपस्थित करने वाला।

मुद्रक—आर्ट प्रिन्टर्स, इलाहाबाद—३